श्रीललिता-सहस्र-नाम

'कौल-कल्पतरु' चण्डी

हिन्दी व्याख्या • प्रार्थना • स्तुति

पुष्प २

प्रकाशक : परा-वाणी आध्यात्मिक शोध-संस्थान
श्रीचण्डी-धाम, अलोपी-देवी मार्ग, प्रयाग-२११००६

उपयोगी पुस्तकें

अद्‌भुत दुर्गा सप्तशती	१५०)
अलोप-शङ्करी देवी	५)
अघोर-पन्थ का निरूपण	२५)
अध्यात्म-योग	१०)
अक्षय-वट	१०)
अनुभूत साधना	२५)
आनन्द-लहरी	१२)
आदि-शङ्कराचार्य अङ्क	१०)
आपदुद्धारक श्रीबटुक-भैरव स्तोत्र	२५)
कमला-कल्पतरु, पुष्प-१, २, ३	१२०)
काली-पूजा-पद्धति	१००)
काली-नित्यार्चन	१५)
कृष्ण-साधना	२५)
काली-कल्पतरु	३००)
काश्मीर की वैचारिक परम्परा	१०)
कुण्डलिनी-साधना	४०)
कुम्भ-पर्व अङ्क	१०)
गङ्गा-यमुना-सरस्वती पूजा-अङ्क	५)
गायत्री-कल्पतरु	५०)
गुरु-तन्त्र (हिन्दी टीका सहित)	१५)
गुरु-तत्त्व-दर्शन एवं गुरु-साधना	१५)
चक्र-पूजा	३०)
चक्र-पूजा के स्तोत्र	२५)
छिन्न-मस्ता नित्यार्चन	२५)
तत्त्व-विवेचन	३)
तन्त्रोक्त शब्द-ब्रह्म-साधना	४५)
तारा-कल्पतरु	३५)
दकारादि श्री दुर्गा-सहस्त्र-नाम	२०)
दश महा-विद्या-अष्टोत्तर-शत-नामावली	३०)
दश महा-विद्या-अष्टोत्तर-शत-नाम	३०)
दश महा-विद्या-कवच	३०)
दश महा-विद्या-गायत्री एवं ध्यान	३०)
दश महा-विद्या तन्त्र	६०)
दिव्य योग	१०)
दीपावली की पूजा-विधि	१५)
दीपावली विशेषाङ्क	४५)
दीक्षा-प्रकाश	३५)
दुर्गा-साधना, पुष्प-१, २	५५)
दुर्गा सप्तशती (पद्यानुवाद)	२५)
दुर्गा सप्तशती (विशुद्ध-संस्करण)	४०)
दुर्गा सप्तशती (बीजात्मक)	१०)
दुर्गा-कल्पतरु (निबन्ध व स्तोत्र-संग्रह)	१५)
दुर्गा-सहस्त्र-नाम-साधना	५)
धन-प्राप्ति के प्रयोग	१०)
धर्म-चर्चा	१०)
धर्म-मार्ग पर	३५)
ध्यान-योग एवं विचार-योग	१०)
नवरात्र-कल्पतरु	१००)
नवरात्र-पूजा-पद्धति (वैदिक)	३)
नवग्रह-साधना (सचित्र)	१००)
निष्काम योग एवं कर्म-संन्यास योग	१५)
पञ्च-मकार तथा भाव-त्रय	४०)
पारायण-विधि	१०)
प्राण-तोषिणी तन्त्र (सर्ग, धर्म-काण्ड)	५०)
बगला-कल्पतरु	१००)
बगला-साधना, पुष्प-१	६०)
बाला-स्तव-मञ्जरी	२५)
बाला-कल्पतरु	३५)
बिहार के देवी-मन्दिर	१५)

वर्ष ७१ (२)

'कौल-कल्पतरु' चण्डी की विशेष प्रस्तुति

श्रीललिता-सहस्र-नाम

पुष्प-२

(२०) श्रीतारा-कान्ति-तिरस्कारि-नासाभरण-भासुरा

से

(२५१) श्रीचिन्मयी

तक

*

व्याख्याकार

'कौल-कल्पतरु' श्रीश्यामानन्द नाथ

*

प्रार्थना एवं स्तुतिकार

'आशु-कवि' पं० हरिशास्त्री दाधीच

*

आदि-सम्पादक

प्रातः-स्मरणीय 'कुल-भूषण' पं० रमादत्त शुक्ल

सम्पादक

ऋतशील शर्मा

*

प्रकाशक

पण्डित देवीदत्त शुक्ल स्मारक

परा-वाणी आध्यात्मिक शोध-संस्थान

कल्याण मन्दिर प्रकाशन

श्रीचण्डी-धाम, प्रयाग-राज-२११००६ ☎ ९४५०२२२७६७

Email : chandi_dham@rediffmail.com

अनुदान ४५/-

पर्व-पत्र

शारदीय नवरात्र, 'विश्वावसु'-सं० २०६९ वि० :: १६ अक्टूबर, २०१२

- आश्विन शुक्ला प्रतिपदा, मङ्गलवार (१६ अक्टूबर, १२) : शारदीय नवरात्र प्रारम्भ। कलश-स्थापना प्रातः-काल ९-०५ के बाद (चित्रा-नक्षत्र दिन ९-०५ तक है। उसके बाद पूरे दिन स्वाती-नक्षत्र है। अतः स्वाती-नक्षत्र में कलश-स्थापना करनी चाहिए)। 'चण्डी'-पाठ प्रारम्भ। सप्त-दिवसीय पाठ-कर्त्ता 'सप्तशती' के अध्याय १ का पाठ करें। शैल-पुत्री देवी का ध्यान-पूजन-मनन।
- आश्विन शुक्ला द्वितीया, बुधवार (१७ अक्टूबर, १२) : 'चण्डी'-पाठ। सप्त-दिवसीय पाठ में अध्याय २-३ का पाठ करें। ब्रह्म-चारिणी देवी का ध्यान-पूजन-मनन।
- आश्विन शुक्ला तृतीया, गुरुवार (१८ अक्टूबर १२) : 'चण्डी'-पाठ। सप्त-दिवसीय पाठ में अध्याय ४ का पाठ करें। वैनायकी श्री गणेश-चतुर्थी-व्रत चन्द्र-घण्टा देवी का ध्यान-पूजन-मनन।
- आश्विन शुक्ला चतुर्थी-पञ्चमी, शुक्रवार (१९ अक्टूबर, १२) : 'चण्डी'-पाठ। सप्त-दिवसीय पाठ में अध्याय ५-६-७-८ का पाठ करें। श्री ललिता-पञ्चमी-व्रत-पूजा। कुष्माण्डा देवी का ध्यान-पूजन-मनन।
- आश्विन शुक्ला पञ्चमी-षष्ठी, शनिवार (२० अक्टूबर, १२) : 'चण्डी'-पाठ। सप्त-दिवसीय पाठ में अध्याय ९-१०। सायं विल्वाभिमन्त्रण। स्कन्द-माता एवं कात्यायनी देवी का ध्यान-पूजन-मनन।
- आश्विन शुक्ला सप्तमी, रविवार (२१ अक्टूबर, १२) : 'चण्डी'-पाठ। सप्त-दिवसीय पाठ में अध्याय ११ का पाठ करें। श्री काल-रात्रि देवी का ध्यान-पूजन-मनन। पत्रिका प्रवेशन।
- आश्विन शुक्ला अष्टमी, सोमवार (२२ अक्टूबर, १२) : 'चण्डी'-पाठ। सप्त-दिवसीय पाठ में अध्याय १२-१३ का पाठ करें। श्री महा-अष्टमी-व्रत। गौरी देवी का ध्यान-पूजन-मनन। रात्रि में महा-निशा-पूजन।
- आश्विन शुक्ला नवमी, मङ्गलवार (२३ अक्टूबर, १२ : 'चण्डी'-पाठ। सिद्धि-दात्री देवी का ध्यान-पूजन-मनन। श्री महा-नवमी-व्रत।
- आश्विन शुक्ला दशमी, बुधवार (२४ अक्टूबर, १२) : महा-नवमी का हवन। नवरात्र-व्रत-पारण (दशमी प्रातः-काल से रात्रि १०.१६ तक)। विजया-दशमी। अपराजिता पूजन। जयन्ती-ग्रहण। शमी-पूजन। नीलकण्ठ-दर्शन।
- आश्विन शुक्ला एकादशी, गुरुवार (२५ अक्टूबर, १२) : पापांकुशा एकादशी व्रत।
- आश्विन शुक्ला पूर्णिमा, सोमवार (२९ अक्टूबर, १२) : शरत्-पूर्णिमा। लक्ष्मी-इन्द्र-कुबेर-पूजा। 'चण्डी' के आदि-सम्पादक कुल-भूषण पं० रमादत्त शुक्ल जी की तृतीय पुण्य-तिथि।

सूचना : 'चण्डी' पुस्तक-माला वर्ष ७१, पुस्तक ०३
श्रीललिता-सहस्त्र-नाम (पुष्प-३) शीघ्र ही दूसरे पैकेट के द्वारा प्राप्त होगा।

पराम्बा की स्तुति और देव-गण

ब्रह्मा जी पराम्बा भगवती की स्तुति करने लगे–"हे **जगन्मातः**! आप **महेश्वरी** हैं। आप भक्तों के दुःख को दूर करनेवाली हैं। सभी प्राणियों के अन्तःकरण में '**चिति**'-रूप से आप स्थित हैं। हम **ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रादि** देवता आपकी भृकुटि के सङ्केत से संसार की रचना आदि करते हैं। हम आपको नमस्कार करते हैं।

"मैं **ब्रह्मा** संसार की सृष्टि करता हूँ। **विष्णु** उसका पालन करते हैं तथा रुद्र संहार। हमारी ईश्वरता की सिद्धि एक-मात्र आपकी कृपा से होती है। हम सभी आपकी कृपा से ही सामर्थ्य पाते हैं। सब प्रकार का अनुग्रह करनेवाले **भगवान् सदा-शिव** आपके चरण-कमलों का ही आश्रय लेकर प्रभाव-शाली होते हैं। इसलिए आप हम सबके द्वारा सेवनीया हैं।

"**वामा, ज्येष्ठा** और **रौद्री**-रूप से आप हम लोगों के पास सदा स्थित हैं। इन तीन रूपों से अलग चौथा रूप भी आपका है, जो '**अम्बिका**' नाम से विख्यात है। हे **मातः**! आकाश को लेकर आप अपने स्थान में स्थित हों। हम लोग '**पञ्च-महा-प्रेत**' नाम से संसार में प्रसिद्ध होंगे।

"आपत्तियों के समय आपने सदैव विचित्र रूप धारण,कर हम सबकी रक्षा की है, जैसे बालक की रक्षा माँ करती है। आपके ही तीन गुणों से हम तीन उत्पन्न हुए हैं और हमारे सामने भी आप तीन गुणों में स्थित हो। इसीलिए आप '**त्रिपुरा**' हो।"

ब्रह्माजी ने उक्त प्रकार स्तुति करते हुए भक्ति-पूर्ण होकर, दण्ड के समान भूमि पर गिरकर, हृदय में **पराम्बा का ध्यान** किया। अब **भगवान् विष्णु** गद्-गद वाणी से अनेक मधुर वचनों द्वारा **श्री जगदम्बा** की स्तुति करने लगे–

"हे **मातः**! हम लोग आपके गुणों से ही उत्पन्न होकर आपके शासन में हमेशा जागते रहते हैं और आपके चरणों की '**भक्ति**' की ही इच्छा करते हैं। हे **देवेशि**! आपके होने से ही हम सभी रूप और गुण से भिन्न-भिन्न शरीरवाले अनेक शक्ति, विभव एवं पराक्रम से सुशोभित होकर प्रकाश-मान् होते हैं, नहीं तो हे **देवि**! यह कुछ भी संसार न होता। **पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश**–ये '**पञ्च-भूत**' और दशों दिशाएँ तथा **सत्-असत्** आपके न होने से कुछ भी उत्पन्न नहीं हो सकता। महान् प्रभाव-युक्त हम **ब्रह्मादिक देवता** आपके ही प्रताप से संसार के नाथ हैं। हम आपके ही चरण-कमलों से उत्पन्न हैं। आपके चरणों की सेवा में ही स्थित हैं, इसलिए आपके चरण-कमलों को नमस्कार करते हैं।

"आपका यह **अतीन्द्रिय स्वरूप** श्रुतियों का मूल है। आपकी माया के वशीभूत हम लोग आपके '**पर-रूप**' को कैसे जान सकते हैं! फिर भी हम आपके चरण-कमलों की सेवा से शुद्ध-चित्त होकर आपको **परम शिव-रूपिणी** जानते हैं।

"**सर्वज्ञ, वाङ्-मय वेद** आपके **उत्पत्ति-रहित रूप** का वर्णन करते हैं, जो **अनन्त गुणों** का द्योतक है। हम लोगों ने यह **तेज-मय रूप** आपकी कृपा से ही धारण किया है। आपका '**महा-प्रकाश-मय स्वरूप**' आपकी सेवा से ही हमें दिखाई पड़ता है।

"हे मातः! देवेन्द्रादि देवताओं के पाप-दोषों की शान्ति के लिए आप सरल रूप धारण करें।"

उक्त प्रकार की स्तुति करते हुए भगवान् विष्णु भी भक्ति-मय अमृत-समुद्र में मग्न होकर इच्छा-विहीन हो गए। तब भगवान् श्री शङ्कर जी ने हाथ जोड़कर भक्ति-भावना से मधुर वचनों द्वारा स्तुति करना प्रारम्भ किया–

"हे परमेश्वरि! आपको नमस्कार! आप सभी देवों से उत्तम हो। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रादि हम लोगों के द्वारा पूजित होने से स्पष्ट है कि आपसे अधिक और कोई नहीं है। आप ही सबसे उत्तम 'राज-राजेश्वरी' हो। उन मनुष्यों को धिक्कार है, जो 'नर' होकर भी 'पशु' हैं! परमेश्वरी महा-माया भगवती पराम्बा को छोड़कर कामना-परक अन्य उपासनाएँ करते हैं! यह तो ऐसा ही है, जैसे कल्प-वृक्ष को छोड़कर सूखे वृक्ष का आश्रय ग्रहण करे।

"हे संसार की माता! आपके चरण-कमलों में हमारा मन विषय-वासना-रहित होकर सदा स्थिर रहे, यही हम चाहते हैं। आपकी ही सेवा में ये दोनों हाथ लगे रहें और यह वाणी सदा आपके गुण-कीर्तन में लगी रहे।

"सती, शारदा और लक्ष्मी आपकी ही कलाएँ हैं, जिन्हें हम लोग हृदय, वाणी तथा शरीर में धारण कर इस संसार की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय करते हैं। ब्रह्मा, विष्णु और मुझ शङ्कर-रूपी पलँग के ऊपर स्थित 'परम शिव' पर आप अनुग्रह करती हैं।

"आप सहज ही चित्-प्रकाश-रूपिणी हैं। पृथ्वी में कठिनता, जल में द्रवता, वायु में गति, आकाश में शून्यता और सूर्य में ऊष्मा जिस प्रकार है, उसी प्रकार आप 'शिव' से 'पृथ्वी' तक सभी तत्त्वों में सार-रूप स्थित हैं। आप महेश्वरी महा-माया के ही प्रभाव से मोहित-चित्त होकर देव-गण आपस में लड़ते रहे हैं। इसलिए आप इनका उद्धार करें। ये आपके ही बालक हैं। ये दानव शत्रुओं द्वारा पीड़ित हैं। आप अपने अमृत-मय कटाक्ष से इनकी रक्षा करें। अमृत-मय किरणों द्वारा सभी प्राणियों के ऊपर कृपा-वृष्टि करें। आप जगत् का आश्रय हैं। आपको सर्वदा नमस्कार।

उक्त प्रकार स्तुति करते हुए श्री शङ्कर भी भगवती त्रिपुराम्बा के ध्यान में मग्न हो गए।

देवाधि-देवों द्वारा स्तुति किए जाने पर प्रसन्न होकर भगवती त्रिपुराम्बा ने देवताओं के मोह को दूर कर दिया और उनके समक्ष अपने दिव्य स्वरूप को प्रकट कर दिया। तपाए हुए सुवर्ण के समान वर्णवाली, दिव्य आभूषणों से युक्त, १८ भुजाओंवाली कन्या-रूप में हँसती हुई भगवती के पैरों की अँगुलियों में नूपुरों तथा पाद-नखों में मूँगे के समान दीप्ति भासित हो रही थी। कमर, नाभि, हृदय के सभी दिव्य आभूषण उनके शरीर में शोभायमान हो रहे थे। धनुष, पाश, अंकुश, घण्टा, डमरु तथा रत्नों का पात्र, शङ्ख, चक्र, गदा, खड्ग आदि लिए भगवती परा-शक्ति, परम पावन रूप धारण कर आकाश में स्थिर हो गईं और ब्रह्मादिक देवताओं से गम्भीर वाणी में बोलीं–'हे पुत्रो! मेरे वचनों को सुनो! मैं तुम्हारा कल्याण करूँगी। देवताओं को जो पारस्परिक मोह प्राप्त हो गया है, उसे दूर करने के लिए ही मेरा प्रादुर्भाव हुआ है।'

इतना कहकर भगवती ने मूर्च्छित देवताओं को देखा, जो मृत-प्राय थे, अमृत-वर्षिणी दृष्टि से भगवती के देखते ही, इन्द्रादि देवता मूर्छा से उठकर 'यह क्या है? क्या है? कहते हुए उठ बैठे। सर्व-प्रथम अग्नि देवता को भेजा गया कि वे पता लगाएँ कि ये देवी कौन हैं? इनकी उत्पत्ति कैसे हुई और इनका बल-स्वरूप क्या है? अग्नि-देवता भगवती के समीप गए और उनसे बोले–'हे कुमारि! आप बताएँ कि आप कौन हैं और आप कहाँ से आई हैं? श्रेष्ठ रूपवाली आपको हम जानने की इच्छा से आए हैं।' भगवती पराम्बा ने अग्नि-देव से पूछा कि–तुम कौन हो, तुम्हारा पुरुषार्थ क्या है? मुझे बताओ।

अग्नि-देव बोले–हे कल्याणी! मैं हुताशन अग्नि हूँ। आपको जानने के लिए इन्द्रादि देवताओं द्वारा भेजा गया हूँ। मेरी शक्ति इतनी अधिक है कि जो संसार पहाड़, नदी, वन से युक्त दिखलाई पड़ता है, उसे मैं क्षण में ही भस्म कर सकता हूँ।

पराम्बा भगवती ने हँसते हुए अग्नि-देव से कहा–हे अग्नि देव! यदि तुम्हारी शक्ति इस प्रकार की है, तो यह एक तिनका है, इसे भस्म करके दिखाएँ।

अग्नि-देव ने अपने को महान् मानते हुए कहा कि 'मैं सब कुछ भस्म कर देने का समार्थ्य रखता हूँ, तथापि आप कहती हैं, तो मैं इस तिनके को ही भस्म करता हूँ।'

ऐसा कहकर अग्नि-देव भयङ्कर क्रोध से बड़ी-बड़ी ज्वालाओं से उस तिनके को जलाने लग गए। महा-बलशाली अग्नि-देव जब अपनी सम्पूर्ण शक्ति को लगाकर भी तिनके को भस्म नहीं कर सके और उनकी ज्वालाएँ हिम-सागर के समान शीतल हो गईं तथा अग्नि-देव के शरीर की समस्त अँगुलियाँ ठण्ड से गलने लग गईं, तब उस समय प्राण-सङ्कट को देखकर अग्नि-देव वहाँ से भाग गए और उनकी कुण्ठित ज्वालाएँ अन्तर्ध्यान हो गईं।

अग्नि-देव ने इन्द्र से आकर सभी वृत्तान्त बताया। तब इन्द्र ने सोम-देव को यह कहकर भेजा कि–'हे शुभ्रांशु! आप ही जाकर पता लगाएँ कि वह कौन है? कहाँ से उत्पन्न है?' इन्द्र के वचनों को सुनकर सोम-देव पराम्बा के समीप जाकर बोले–'हे कुमारि! तुम कौन हो? तुम्हारा क्या पराक्रम है? मुझसे कहो। हम तुम्हें जानने की इच्छा से आए हैं।'

भगवती पराम्बा, सोम-देव की बातें सुनकर बोलीं–पहले तुम बताओ कि तुम कौन हो? कहाँ से आए हो? तुम्हारा क्या पराक्रम है? इसके बाद, हम भी अपना वृत्तान्त कहेंगे।

सोम-देव ने कहा कि–मैं सोम-राज हूँ। समस्त औषधियों का पालन, संसार का पालन-पोषण करनेवाला हूँ। हमारे द्वारा ही संसार की लताएँ औषधियाँ जीवित हैं। मैं इनमें अमृत-सञ्चार करता हूँ।

भगवती ने कहा–हे सोम-देव! हमें भी अपना पराक्रम दिखाएँ। यह एक तृण है, इसे आप अपनी शक्ति से हरा-भरा कर दें। मैं इसे भस्म कर देती हूँ, आप इसे जीवित करें।

सोम-देव, पराम्बा के उक्त कथन से क्रोध-युक्त हो बोले कि–'तुम बाला हो, इसलिए ऐसा कहती हो। हमारे पुरुषार्थ को नहीं जानती। हम तुम्हें भी अपनी ठण्डी किरणों द्वारा जड़ बना देंगे।' ऐसा कहकर सोम-देव अपनी ठण्डी किरणों की वर्षा कर उस तृण को ठण्डा करने लगे, किन्तु

भगवती के द्वारा जलाया हुआ तृण इतना तप्त हो गया कि उसकी आँच से तपित होकर सोम-देव वहाँ से भाग खडे हुए।

इसके पश्चात् इन्द्र ने वायु-देव से कहा कि–'हे वायु, तुम्हीं जाकर पता लगाओ, यह कौन है? इसका क्या पराक्रम है? वायु देवता अभिमान के साथ, भगवती के समीप जाकर बोले–हे कुमारि! तुम कौन हो, तुम्हारा बल-पुरुषार्थ क्या है?

भगवती ने कहा–पहले तुम बताओ, कौन हो? तुम्हारा पराक्रम क्या है?

वायु देवता बड़े गर्व के साथ बोले कि 'हे अबले! मैं अति बलवान वायु देवता हूँ। मैं ही संसार का प्राण हूँ। मेरे द्वारा ही सभी तत्त्व चलते हैं। मैं समुद्र का शोषण क्षण भर में कर सकता हूँ। सारे संसार को क्षण भर में उड़ा सकता हूँ। मेरे पुरुषार्थ के भय से सम्पूर्ण आकाश-पाताल क्षण भर में क्षुब्ध हो जाते हैं। मेरी गति को कोई भी रोक नहीं सकता।

वायु देवता की गर्वोक्ति को सुनकर पराम्बा ने कहा कि–हे वायु-देव! यदि तुम्हारी ऐसी शक्ति है, तो हमें भी इस तृण को उड़ाकर दिखाओ।

वायु देवता, पराम्बा के तृण को उड़ा देने का पराक्रम करने लगे। अपना सम्पूर्ण बल लगाकर भी वे तृण को क्षण-मात्र हिलानें में समर्थ न हो सके और अपने को लँगड़ा अनुभव करने लगे। उन्होंने अपनी समस्त चेतना को क्षीण देखा। उनके एक पैर में चलने की शक्ति भी न रह गई। लज्जा से वायु देवता वहाँ से भाग पड़े। अमोघ पराक्रम-शाली उस महा-भूत को पराजित देखकर देव-राज इन्द्र चिन्ता-युक्त हो गए कि यह क्या है, परन्तु अनेक प्रकार से सोचने पर भी उनकी समझ में नहीं आया। किस प्रकार इस भूत को हम जीतें, इस प्रकार सोचते हुए, अपने बल के अभिमान में वज्र लेकर बादलों में चढ़कर इन्द्र स्वयं उस स्थान पर गए, जहाँ भगवती पराम्बा स्थित थीं।

सभी देवों के सहित जब इन्द्र ने भगवती से प्रार्थना की, तब भगवती स्वयं बोलीं–'...मैं ही रुद्र, वसु, आदित्य और विश्वेदेव आदि देवों के साथ अपना कार्य करती हूँ। मेरे ही सामर्थ्य से ये देवता कार्य कर रहे हैं। मैं ही मित्रा वरुण के प्रकाश को धारण करतीं हूँ और मैं ही इन्द्र, अग्नि तथा अश्विनीकुमार के प्रकाश को भी धारण करती हूँ। मैं आदि-शक्ति हूँ। उपासकों को अनेक प्रकार के ऐश्वर्य मैं ही देती हूँ। मैं ही यज्ञों के लिए पूर्ण ज्ञान-स्वरूपिणी हूँ। विद्वान् लोग मेरी ही उपासना करते हैं। देवता लोग मेरी ही तुष्टि के लिए अनेक प्रकार के कार्य करते हैं। मैं ही विद्वानों की कामना के अनुसार उन्हें विद्वान् ब्रह्म-वेत्ता कर देती हूँ। मैं ही सब मनुष्यों को आनन्द की प्राप्ति कराती हूँ। मैं ही स्वर्ग, मृत्यु और पाताल में अन्तर्यामी रूप से प्रविष्ट हो रही हूँ। सृष्टि के नियामक जो पितर हैं, उन्हें मैं बनाती हूँ। सृष्टि की कारण-भूता मैं हूँ। द्यु-लोक, पृथ्वी-लोक और इनसे परे जो लोक हैं, वे सभी मुझमें ही समाए हैं।'

तब इन्द्र-सहित सब देवों ने श्रद्धा-पूर्वक कहा–'महा-देवी को नमस्कार! बड़े-बड़ों को अपने-अपने कर्तव्य में प्रवृत्त करनेवाली कल्याण-कर्त्री को सदा नमस्कार।...हे माता! सब प्रकार से हमारी रक्षा करो।'

***

श्रीललिताम्बा स्तुति

* 'कुल-मार्तण्ड' पं. योगीन्द्रकृष्ण दौर्गादत्ति जी शास्त्री

सृष्टि-स्थिति-प्रलय-कारक देव तीनों, ब्रह्म हरीश्वर महेश्वरि! ले तवाऽऽज्ञा।
होते स्व-कार्य करके कृत-कृत्य नित्य, तू है बड़ी इसलिए सब दैवतों में।।०१
तेरी अनन्त महिमा जब वर्णना में, पाते न पार परमेश्वरि! वेद चारों।
हैं शास्त्र कुण्ठितं, पुराण बने पुराने, तन्त्र स्वतन्त्र न जरा जगदेक-माता।।०२
लोकोपकार-हित ही अवतार लेके, तू एक भी विविध रूप धरै धरा में।
आपद्-निवारण मुदा कर किङ्करों की, तू एक ही विलसती फिर चित्-स्वरूपा।।०३
दुर्गा रमा महिष-मर्दिनिका गिरा तू, कात्यायनी गिरि-सुता ललिताऽम्बिका तू।
शाकम्भरी भगवती भव-पालिका तू, श्रीचण्डिका दनुज-सूदन कालिका तू।।०४
संसार-रक्षण निमित्त स्व अंश से है, तू जागती जगत में इस काल में भी।
श्री-क्षेत्र द्वादश बने तव वास के हैं, जो हैं विकाशक उपासक मानसों के।।०५
'को-दण्ड' एक कर में तव राजता है, उद्दण्ड भण्ड-वध-कृत् 'शर' दूसरे में।
है 'पाश' दास-दुःख-नाशक तीसरे में, हे अम्ब! 'अंकुश' निरंकुश अन्य में है।।०६
तू कादि-हादि-मनु-रूपवती महेशी, श्रीकाम-राज-जननी ज़न-सौख्य-दात्री।
तू मातृकाऽक्षर-स्वरूपवती सती है, श्रीषोडशी अपितु पञ्च-दशी प्रसिद्धा।।०७
कोई जपा कुसुम के सम रक्त-वर्णा, चन्द्राऽऽनना शशि-कला-युत भाल-देशा।
सतू आयुधाऽन्वित चतुर्भुज रूपवाली, तेरी सदैव करते जगदम्ब पूजा।।०८
ए-ई-क-कार-त्रय और ल-कार तीन, ह्रीङ्कार तीन ह-स-युग्म-सुत त्रि-कूट।
कोई त्वदीय मनु का मन में भवानि!, हैं नित्य जाप करते जप - यज्ञवाले।।०९
श्रीनाथ-दर्शित कुलोचित-मार्ग द्वारा, षट्-चक्र-भेद करके शिव-रूप होके।
श्रीमत् सहस्त्र-दल-पङ्कज में सदैव, योगीन्द्र ध्यान करते तव ध्यान गम्ये!।।१०
तू एक बार जिसको करुणार्द्र दृष्टि-द्वारा निरीक्षण करै क्षण मात्र को भी।
तत्काल ही वह सुरेश्वर - वन्द्य होता, माँ! चाहिए इसलिए तव एक दृष्टि।।११

***

श्रीललिताम्बा स्तुति

महा-माये! तेरा परम-शिव है मञ्चक बना, बड़े चारों देव द्रुहिण-हरि-रुद्रेश्वर मुदा।
बने प्यारे चारों चरण जिसके चारु-चरिते! विराजै तू माता उस पर पराऽऽनन्द-लहरी।।०१
सुहाती माथे पै हिमकर-कला-मञ्जु जिसके, जपा पुष्पाऽऽरक्ता धनुष-शर-पाशांकुश-धरा।
स्तनाऽऽनम्रा तेरी अति रुचिर ऐसा वर तनू, नसावे दुःखों को जननि! जगती में स्व-जन के।।०२
तूझे पूजें माता! हरि-हर-विधाता सु-विधि से, कहावें देवों में सब विधि बड़े देव नित जो।
नहीं तेरे आगे अधिक तुझसे और सुर हैं, इसी से तू श्रेष्ठा विवुध-कुल में है कुल-रते।।०३
महा-शक्ते! तू है सकल जग की प्रेरण-करी, तवाऽऽज्ञा पाके ही यह चल रही नित्य ललिते!
बिना तेरे माता! नर-असुर औ सर्व सुर भी, हिलें-डोलें नाहीं बनकर महाऽशक्त मृत से।।०४
शिवे! तेरी शक्ति-त्रय सरसुती और कमला, भवानी को पाके अभिनव महा-शक्ति-युत हो।
कृपा-द्वारा तेरी विधि हरि महेश त्रिसुर भी, करें आसानी से जगत-रचना रक्षण हृति।।०५
सदा त्वन्माया से मनुज सहसा मोहित हुए, महा-माये! विश्वम्भरि! जननि हा! भूल तुझको।
धरित्री में पूजें विविध विधि से देव-गण को, हुआ है जो पैदा सतत तुझसे सृष्टि-युग में।।०६
बने सोने से ज्यों बहुत विधि के भूषण उमे! पृथक् सोने से हैं कथमपि कहाते न जग में।
तथा पैदा होके जननि! तुझसे सर्व सुर हैं, बने संज्ञाधारी अलग तुझसे हो न सकते।।०७
स्व-भक्तों को दाता सतत जप से सिद्धि-गण का, दरिद्रों का चिन्तामणि दहन पापौघ वन का।
त्रयी तन्त्र-व्यापी भव-जलधि-नौका हर घड़ी, बसे तेरा नाम प्रिय जननि! मेरे वदन में।।०८
बनाए हैं तूने गिरिवर धरा वारिधि तथा, नदी सूर्येन्दू औ दहन पवनाऽऽकाश गिरिजे!
सपर्या-सामग्री निखिल इनसे ही बन रही, तव द्रव्यों से ही किस विधि तवाऽर्चा कर सकूँ।।०९
वही मूर्धा, मूर्धा तव नमत है जो चरण में, वही आँखें, आँखें सतत निरखें मूर्ति तव जो।
वही जिह्वा, जिह्वा तव जननि! जो नाम जपती, करें पूजा को जो कर , कर वही शङ्कर-प्रिये!।।१०
तुही काली तारा गल ललित हारा जलधिजा, शुभाङ्गी मातङ्गी अपिच भुवना षोडशि! शिवे!
कहावे तू धूमा जननि! बगला भैरव-प्रिया, तुही छिन्न-ग्रीवा सकल सुर 'योगीन्द्र' विनुते।।११
पदाब्जों में तेरे भगवती! करूँ एक विनती, अपर्णे! हो पूर्ण द्रुत वह दया से तव शिवे!
बसे तेरी मूर्ती मम हृदय में मन्त्र मुख में, चरित्रों की गाथा सतत प्रविशै कर्ण-पुट में।।१२

***

(२०) श्रीतारा-कान्ति-तिरस्कारि-नासाभरण-भासुरा

देवी के नासा-दण्ड के '**आभरण**' (आभूषण) ताराओं को लज्जित करनेवाले अर्थात् ताराओं से भी अधिक चमकीले और स्वच्छ हैं। ये **शुद्ध चेतनता** के द्योतक हैं, जो **सर्व-व्यापिनी** अर्थात् जड़ पदार्थों में भी रहनेवाली समस्त विश्व की '**धारिका-शक्ति**' है। '**योग-वाशिष्ठ**' भी यही कहता है कि इसके न रहने से किसी पदार्थ का अस्तित्व नहीं है–

यत्र यत्र परं-ब्रह्म, तत्र सन्ति जगन्ति हि।
तृणे काष्ठे जले कुड्ये, सर्वत्रैव परं स्थितम्।।

अचित् गन्ध-तन्मात्रा–आभूषण-रूपा चित्-शक्ति से भूषिता है। यहाँ भी नित्य संयोग-सम्बन्ध है। यह सम्बन्ध नीर-क्षीर-सदृश अर्थात् जिस प्रकार दूध और जल का सम्बन्ध है, उसी प्रकार **सत्** और **असत्** या **चित्** और **अचित्** में सम्बन्ध है।

◆◆प्रार्थना◆◆

जिनके नाक का आभूषण ताराओं की कान्ति को भी तिरस्कृत करनेवाला है, वे जगदम्बा श्रीललिताम्बा मेरे मन में यथेष्ट विहार करें।

***

(२१) श्रीकदम्ब-मञ्जरी-क्लृप्त-कर्णपूर-मनोहरा

कदम्ब की मञ्जरी से रञ्जित कानों के ऊपरी भाग के आभूषण से **श्रीललिता** मन को हरनेवाली हैं। यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि जहाँ **नाक का आभूषण–अत्यन्त प्रकाशवाली मणियों** का है, वहाँ **कान का आभूषण–कदम्ब फूल की मञ्जरी** है। यह भी मणियों का होता, तो सामञ्जस्य रहता। इस असामञ्जस्य का कारण भी रहस्य-मय है।

'**कदम्ब**' से यहाँ फूल का आशय नहीं है। '**कदम्ब–कद-अम्ब च् उणादि** का अर्थ '**समूह**' है, यह समूह '**शक्ति-समूह**' का ही द्योतक है। इस '**शक्ति-समूह**' की मञ्जरी (मञ्जु-ऋ) सुन्दर रूप में व्यक्त होनेवाली है। ऐसा शक्ति-समूह कर्णेन्द्रिय के ऊर्ध्व भाग की शोभा बढ़ा रहा है। कर्णेन्द्रिय की तन्मात्रा–**शब्द** है। अतः इस आभूषण से यह बोध होता है कि सृष्टि के लिए उन्मुखी '**धर्मी-शक्ति**' के शब्द तन्मात्रिक शक्ति-समूह से '**मातृकाएँ**' उत्पन्न होकर **विश्व की सृष्टि** करने जा रही हैं। यहाँ **कदम्ब** की गुठली, जो गोलाकार होती है, **विन्दु** की द्योतक है। इसी **विन्दु** की ध्वनि या शब्द से **मातृकाओं की उत्पत्ति** होती है, जो **विश्व की सृष्टि** का कारण है (शक्ति-सङ्गम तन्त्र)–

विन्दु-ध्वनि-सकाशात् तु, प्रत्येकं वर्ण-जातयः।
मातृकार्णास्तदा जाता, अक्षरेति तदाऽभवत्।।

◆◆प्रार्थना◆◆

जिनके कर्णाभूषण कदम्ब की मञ्जरी के समान मनोहर हैं, वे भगवती श्रीललिताम्बा मुझे सदा श्रुतियों की वाणी को सुनने की प्रीति प्रदान करें।

***

(२२) श्रीताटङ्क-युगली-भूत-तपनोडुप-मण्डला

'ताटङ्क-युगली-भूत-तपनोडुप-मण्डला' अर्थात् भगवती के ताटङ्क-'सूर्य' और 'चन्द्र' हैं। जहाँ अन्य महा-विद्याओं के नयन-युगल की उपमा चन्द्र और सूर्य से दी जाती है, वहाँ इस महा-विद्या की रूप कल्पना में नेत्र के अतिरिक्त स्तन और ताटङ्क-युगल (कर्ण के आभूषण) की भी उपमा 'सूर्य' और 'चन्द्र' से दी जाती है। यह कल्पना श्रौत (वैदिकी) पद्धति के अनुरूप है–

सूर्य-चन्द्रौ स्तनौ देव्यास्तावेव नयने स्मृतौ।
उभौ ताटङ्क-युगलमित्येषा वैदिकी श्रुतिः।।

साहित्य-शास्त्र के अनुसार एक ही पदार्थ के पृथक्-पृथक् गुणों की उपमा पृथक्-पृथक् भावों में दी जाती है। यथा–चन्द्र की उपमा शीतलता, सुन्दरता, मिश्र शुद्धता अर्थात् कलङ्क-सम्बद्धत्व आदि में दी जाती है। इसी प्रकार जब नयनों की उपमा 'सूर्य-चन्द्र' से दी जाती है, तब उसका आशय है–दिवा-रात्री का अर्थात् 'सार्व-कालिक साक्षी' होना या 'सर्व-व्यापकत्व'भाव।

इसके विपरीत जब ताटङ्क की उपमा 'सूर्य-चन्द्र' से दी जाती है, तो स्थूल-रूप से गोलाकार और चमकीले भावों का बोध होता है। यहाँ इसका सूक्ष्म आशय काल के प्रधान विभाजन करनेवाले, दिवा-रात्रि-कारक क्रमशः सूर्य और चन्द्र से है। यह स्वाभाविक है क्योंकि अवकाश के गुण-'शब्द' का ग्रहण करनेवाली श्रवणेन्द्रिय ही है। इसके ऊर्ध्व भाग का आभूषण, अपने गुण-समूह द्वारा गुणी 'आकाश' का बोध कराता है, जब कि नित्य सम्बद्ध 'काल' का बोध कर्णेन्द्रिय के अधो-भाग के आभूषण–'सूर्य' और 'चन्द्र'-रूपी दो ताटङ्क कराते हैं।

◆◆प्रार्थना◆◆

जो अपने कानों में 'सूर्य' अर्थात् तपानेवाले तथा 'चन्द्र' अर्थात् शीतल करनेवाले–दोनों को समान रूप से आभूषण के रूप में धारण करती हैं, वे भगवती श्रीललिताम्बा मुझे भी सुख और दुःख को समान समझते हुए, आपका सदा भजन करने की कृपा प्रदान करें।

***

(२३) श्रीपद्मराग-शिलादर्श-परिभावि-कपोल-भू

देवी के दोनों कपोल पद्मराग मणि से भी अधिक स्वच्छ बिम्ब-ग्राहक हैं। यहाँ दर्पण-जैसी बिम्ब-ग्राहकता ही रहस्य-मय है। 'भास्कर राय' के अनुसार, यहाँ कामेश्वर के प्रतिबिम्ब का ही ग्राहकत्व है, परन्तु शुद्ध शक्ति-वाद की दृष्टि से भगवती का अपना ही बिम्ब दिखानेवाले कपोल-द्वय हैं। शुद्ध शाक्त-सिद्धान्त के अनुसार भगवती स्वयं–'प्रकाश' और 'विमर्श', 'धर्मी' और 'धर्म-शक्ति' दोनों हैं।

शिव वा कामेश्वर की सृष्टि प्रपञ्चार्थ ही हुई है। आदि भगवती अकेली पर-विन्दु रूप में थीं (वह्वृचोपनिषत्)-'देवी ह्येकाग्र आसीत्।'

अनन्तर इसने अपना बिम्ब देखा (शक्ति-सङ्गम तन्त्र)–

एतस्मिन्नेव काले तु, स्व-बिम्बं पश्यति शिवा।

यही बिम्ब माया हुईं, जिनसे मानसिक शिव हुए–

तद् बिम्बं तु भवेन्माया, तत्र मानसिकं शिवम्।

इन्हीं शिव को सृष्टि के निमित्त भगवती ने भर्त्ता के रूप में ग्रहण किया–

तं विलोक्य महेशानि!, सृष्ट्युत्पादन-कारणात्।
आदि-नाथं मानसिकं, स्व-भर्त्तारं प्रकल्पयेत्।।

अतएव पर-बिन्दु-रूपिणी स्त्री-लिङ्ग-वाच्या चित्-परा महा-शक्ति ही अजा है, जिससे विन्दु-द्वय–१. रक्त-विन्दु अर्थात् शक्ति और २. शुक्ल-विन्दु अर्थात् शिव हुए हैं।

'भर्त्ता' वा पति-शब्द के प्रयोग से सत्ता की श्रेष्ठता वा निर्द्वन्द्वता में असामञ्जस्य नहीं आ सकता। ब्रह्म-सूत्र (३८)–'सम्बन्धानुपपतेश्च' से भी ऐसा ही बोध होता है। अस्तु, स्व-विम्बादर्श से विश्व-रूपादर्श का तात्पर्य है।

इसी को देखनेवाले को 'गीता' ने–यो मां पश्यति सर्वत्र, सर्व च मयि पश्यति' कहा है।

आगम (काम-कला-विलास) के अनुसार यह 'विमर्श' दर्पण है, जिसमें महा-विन्दु की छाया दीख पड़ती है–

पर-शिव-रवि-कर-निकरे प्रति-फलति विमर्श-दर्पणे विशदे।
प्रति-रुचि-रुचिरे कुड्ये चित्त-मये विविशते महा-विन्दुः।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! भगवती की कपोल-स्थली जिस प्रकार पद्मराग-मणि के दर्पण की शुचिता तथा कान्ति को तिरस्कृत करनेवाली है, उसी प्रकार तुम भी विषयों का तिरस्कार कर शुचित्व को धारण करो। विषयों से जड़ता आती है, उनसे दूर रहो और उन्हें दबाकर उज्ज्वल बनो।

***

(२४) श्रीनव-विद्रुम-बिम्ब-श्री-न्यक्कारि-दशनच्छदा

भगवती के अधर व ओष्ठ नवीन मूँगे के सदृश लाल कान्तिवाले हैं। यहाँ पूर्व के दोनों रूपों के प्रतिकूल 'शुद्ध-विद्या' अर्थात् 'सत्त्व-गुण' को रक्ताभ ओष्ठ और अधर अर्थात् 'रजो-गुण' से छिपाकर यह स्पष्ट किया गया है कि भगवती सृष्ट्युन्मुखी हैं।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! भगवती के ओष्ठ नवीन मूँगों के बिम्बों की शोभा को भी तिरस्कृत करने वाले हैं। अतः तुम भी विराग विशिष्ट रागवाले बनो।

***

(२५) श्रीशुद्ध-विद्यांकुराकार-द्विज-शक्ति-द्वयोज्ज्वला

भगवती की दोनों दन्त-पंक्तियाँ शुद्ध विद्या के अंकुर के सदृश उज्ज्वल हैं। शुद्ध विद्या–'ब्रह्म-विद्या' या 'मधु-विद्या' को कहते हैं। निराकार ब्रह्म की विद्या–'ब्रह्म-विद्या' और साकार ब्रह्म की विद्या–'मधु-विद्या' है।

शुद्ध विद्या से 'शुद्ध अद्वैत-भाव' का तात्पर्य है, जिसमें इदन्ता और अहन्ता भाव-द्वय की एकता है–सा भवति शुद्ध-विद्या, इदन्ताऽहन्तयोरभेदम्।

शुद्ध विद्या को 'दत्तात्रेय-संहिता' आदि शास्त्रों के अनुसार श्रीविद्या कहते हैं। इस विद्या के अनुसार अंकुर-स्वरूप षोडशाक्षरी विद्या के सोलह दाँत ऊपर के और सोलह दाँत नीचे के कहे गए हैं क्योंकि श्रीविद्या के षोडश अक्षर–मूलाधार से परा, पश्यन्ती आदि क्रम से वैखरी-रूप में मुख से बाहर हो उपदिष्ट होकर विस्तृत हुए। यह विस्तार मुख-स्थित दाँत की दोनों पंक्तियों द्वारा ही हुआ है। अथवा सोलह-सोलह महा-विद्याएँ।

प्रसिद्ध दस महा-विद्या के अतिरिक्त छः महा-विद्याएँ ये हैं–१. जय-दुर्गा, २. शूलिनी, ३. अश्वारूढ़ा, ४. त्रैलोक्य-विजया, ५. वाराही और ६. अन्न-पूर्णा–'दश-पूर्वाश्च संहृद्य जय-दुर्गा च शूलिनी अश्वा-रूढ़ा महा-विद्या त्रैलोक्य-विजयाऽभिधा।। वाराही चान्नपूर्णा च कला-संख्या प्रकीर्तिता'–शक्ति-सङ्गम तन्त्र। इन्हीं सोलहों महा-विद्याओं को परा और अपरा-क्रम से द्वि-गुणित करने से बत्तीस विद्याएँ होती हैं। तन्त्रोक्त बत्तीस दीक्षाएँ भी बत्तीस विद्याओं के प्रमाण हैं।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! भगवती श्रीललिताम्बा के दाँतों की दोनों पंक्तियाँ विशुद्ध विद्या के अंकुरों के समान उज्ज्वल शोभित हैं। अतः तुम भी अन्धकार और अज्ञान का अपहरण करनेवाले उपयुक्त ज्ञान को धारण करो।

***

(२६) श्रीकर्पूर-वीटिकामोद-समाकर्षि-दिगन्तरा

कर्पूर-युक्त ताम्बूल की सुगन्ध से दशों दिशाएँ सम्यक् प्रकार से आकर्षित हैं। 'कर्पूर-युक्त ताम्बूल' का यौग-रूढ़िक अर्थ है–एला, लवङ्ग, कर्पूर, कस्तूरी, केसर, जायफल के दल और चूना-कत्था से युक्त ताम्बूल।

दशों दिशाओं से दिक्-पालों का तात्पर्य है। अतः इस नाम के अनुसार दशों दिक्-पालों की उत्पत्ति पराम्बा के मुख-कमल-स्थित पान की गिलौड़ी के चर्वण-जनित सुगन्धि से होती है। इनकी स्थिति भी इसी सुगन्धि पर निर्भर करती है। इसी से ये सर्वदा ताम्बूल-पूरित-मुखी कही गई हैं।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! भगवती के मुख के कर्पूर-युक्त पान की सुगन्ध ने दिगन्तों को भी सुगन्धित कर दिया है। अतः तुम भी उन गुणों को धारण करो जिनसे सभी स्नेह करते हैं।

***

(२७) श्रीनिज-संल्लाप-माधुर्य-विनिर्भर्त्सित-क्रच्छपी

भगवती अपने स्वतः सुन्दर वर्णात्मक शब्द-ध्वनि से श्रेष्ठ वीणा (कच्छपी) को निःशेष अर्थात् सब प्रकार से तुच्छ बनानेवाली हैं। दूसरे शब्दों में भगवती वीणा-विनिन्दित-स्वरा हैं।

यह नाद सामान्य नाद नहीं, **ब्रह्म-प्रणव-नाद** है। इसको सुन लेने पर **चित्त निर्मल** हो जाता है, **विश्व विस्मृत** हो जाता है और मन को **विषय की आकांक्षा** नहीं रहती (**नाद-विन्दूपनिषत्**)–

'नादासक्तं सदा चित्तं, विषयं नहि कांक्षति। बद्धः सु-नाद-गन्धेन, सद्यः सन्त्यक्त-चापलः। विस्मृत्य विश्वमेकाग्रः, कुत्र-चिन् नहि धावति।' इसी प्रकार की इसमें मधुरता है।

◆◆प्रार्थना◆◆

जिसकी मधुर वाणी सरस्वती की वीणा से भी मधुर है, वे हमें सदा मधुर भाषण करने की सद्-बुद्धि देवें।

***

(२८) श्रीमन्द-स्मित-प्रभा-पूर-मज्जत्-कामेश-मानसा

भगवती मन्द मुस्कान के लावण्य-प्रवाह में **कामेश्वर** के मन को मज्जन करानेवाली हैं। नेत्र के कृपा-कटाक्ष का समर्थन मन्द मुस्कान से है। इसी भाव को, **आद्या** के सम्बन्ध में **'महा-निर्वाण तन्त्र'** इन शब्दों में व्यक्त करता है–

महा-कालं वीक्ष्य विकासितानन-परामाद्यां भजे कालिकाम्।

इससे **शिव-शक्ति** के सामरस्य का बोध होता है। दूसरे शब्दों में **चेतन-रूपिणी भगवती** की प्रभा-धारा में ओत-प्रोत होकर **शिव** वा **स्थाणु** में चेतनता आती है। **'शिव'** से संसार का बोध होता है। अतः **भगवती** की प्रभा-धारा में विश्व निमज्जित होकर विलास करता है। **'आनन्द-लहरी'** (४०) इसी भाव को इन शब्दों में व्यक्त करती है–

विधूतान्तर्ध्वान्ता विलसति चकोरीव जगती।

◆◆प्रार्थना◆◆

जिसके मन्द मुसकुराहट की प्रभाओं के पूर में कामेश्वर पर-शिव का भी मन डूब जाता है, वह महा-माया श्रीललिताम्बा हमारे ऊपर कृपा करें, जिससे हमारे प्रति सबका आकर्षण सदा के लिए बना रहे।

***

(२९) श्रीअनाकलित-सादृश्य-चिबुक-श्री-विराजिता

भगवती अनुपमेय चिबुक (ठुड्डी) वाली हैं। **भगवती** न उपमा हैं, न उपमेया धर्मी। शक्ति वा गुणों की क्या कथा! इसके धर्म वा गुण की भी उपमा नहीं है। **'सप्तशती'** में भी कहा है कि– **केनोपमा भवतु तेऽस्य पराक्रमस्य।'** इस प्रकार भगवती के अङ्ग चिबुक को अतुलनीय कहकर अनुपमेया सिद्ध किया है। **'काम-कला-विलास'** भी ऐसा कहता है–

सा जयति शक्तिराद्या निज सुख-मय-नित्य-निरुपमाकारा।

◆◆प्रार्थना◆◆

जिसकी चिबुक अर्थात् ठोढ़ी की समता एवं समुज्ज्वलता अनुपम है, उन महा-माया भगवती ललिता की कृपा से हमारी बुद्धि और मन अधिकाधिक समत्व-मय होवे।

***

(३०) श्रीकामेश-बद्ध-माङ्गल्य-सूत्र-शोभित-कन्धरा

कामेश्वर से बँधे सौभाग्य-चिह्न-सूत्र से **भगवती** का गला शोभित है, परन्तु समास बदल देने से यह (**कामेश एव बद्धः माङ्गल्य-सूत्रेण, सूत्र-रूपेण तेन शोभितं कन्धरं यस्याः सा**) **शक्ति** और **शिव** के **नित्य अविना-भाव**-सम्बन्ध का बोधक हो जाता है। इस नित्य सम्बन्ध का द्योतक **अर्द्ध-नारीश्वर**-रूप है, जिसका प्रतिपादन '**आनन्द-लहरी**' में इन शब्दों में है–

त्वया हृत्वा वामं वपुरपरि-तृप्तेन मनसा, शरीरार्धं शम्भोरपरमपि शङ्के हृतमभूत।

इस प्रकार **भगवती** ने **वाम-भाग** तो पूर्व ही ले लिया था, अब **कामेश** को **सौभाग्य-सूत्र** के रूप में बाँधकर गले में धारण कर शेष आधे **दाहिने भाग** को भी ले लिया है। **द्वितीया विद्या** ने अपने **भैरव अक्षोभ्य** को **सार्द्ध-त्रिवलयाकृत सर्प-सूत्र** में अपनी जटा में और **तृतीया विद्या** ने अपने **भैरव कामेश्वर** को सूत्र-रूप में अपने गले में रक्खा है। दोनों के तात्पर्य में किञ्चित् मात्र भेद है।

◆◆प्रार्थना◆◆

जिनका कण्ठ-प्रदेश शङ्ख से कई गुणा अधिक सुन्दर और शुभ्र है और भगवान् पर-शिव कामेश के द्वारा बाँधे हुए मङ्गल-सूत्र से जो शोभा पा रहा है, वे कृपा की मूर्ति भगवती श्रीललिताम्बा हमारे ऊपर सदा कृपा करती रहें।

***

(३१) श्रीकनकाङ्गद-केयूर-कमनीय-भुजान्विता

भगवती अङ्गों की शोभा बढ़ानेवाले **सोने के केयूरों** से सुन्दर भुजाओं से युक्त हैं। यहाँ बाहु के आभूषण-विशेष '**अङ्गद**' का विशेषण '**केयूर**' है। '**केयूर**'-सी सुन्दर भुजाओं से **निर्विषयत्व, निरञ्जनत्व, अशोकत्व** (**आनन्दत्व**) और **अमृतत्व-धर्म** का बोध होता है।

◆◆प्रार्थना◆◆

जिनकी भुजाएँ सुवर्ण-रत्न से जटित नाना प्रकार के आभूषणों से पूर्ण हैं, वे भगवती श्रीललिताम्बा हम भक्तों को सभी प्रकार की सम्पदाएँ प्रदान करें।

***

(३२) श्रीरत्न-ग्रैवेय-लोल-मुक्ता-फलान्विता

ग्रीवा के एक आभूषण को '**चिन्ताक**' कहते हैं, जो आन्ध्र प्रदेश में प्रचलित था। यह '**चिन्ताक-हार**' रत्नों से जड़ा और मुक्ता (मोती) से युक्त होता है। मुक्ता भी रत्न ही है। फिर इसका विशिष्ट उल्लेख क्यों है? वह भी '**फल**' से युक्त! क्या इससे यह बोध होता है कि '**चिन्ताक-हार**' रत्नों से जुड़ा होता हुआ भी '**मुक्ता**' नामक एक फल से युक्त है? पुष्प हारों में पिरोए जा सकते हैं, परन्तु फल का पिरोया जाना अयुक्त-सा है। अतएव इसके सूक्ष्मार्थ को देखना चाहिए। '**ग्रैवेय-चिन्ताक**' का अर्थ है–ग्रीवा में चिन्ता अर्थात् ध्यान करनेवाले। इस प्रकार के ध्यान करनेवाले मध्यमाधिकारी हैं। '**लोल**' सतृष्णक अर्थात् अधमाधिकारी हैं।

'मुक्ता' से परा अर्थात् अद्वैत-भावापन्न उत्तमाधिकारी का बोध होता है। यह 'चिन्ताक' उत्तम, मध्यम और अधम–तीनों स्थानों का द्योतक है, जहाँ ध्यान करनेवाले क्रमशः तीनों वर्गों में विभाजित होते हैं। श्रुति भी कहती है कि उत्तम स्थान ब्रह्म-रन्ध्र, मध्यम स्थान ललाट-मध्य और अधम स्थान हृदय है। किसी का मत है कि नाभि-स्थान अधम है। इन तीनों का रत्न-भूत फल अर्थात् अधिक या अल्प फल देनेवाली भगवती हैं। इससे प्रकृत और अप्रकृत दोनों का विषय-श्लेष है।

◆◆प्रार्थना◆◆

हीरे, पन्ने, पद्मराग, नीलमणि आदि रत्नों तथा मोतियों से सुशोभित कण्ठ का आभूषण धारण करनेवाली श्रीललिताम्बा भगवती हमें सभी प्रकार से सफल बनाएँ।

***

(३३) श्रीकामेश्वर-प्रेम-रत्न-मणि-प्रतिपण-स्तनी

कामेश्वर के प्रेम-रूपी रत्न को स्तन-रूपी मणि-विनिमय में देकर खरीदा है जिसने। इस साहित्यिक आलङ्कारिक पद्य में आध्यात्मिक भाव रहस्य-रूप से छिपा है। इसके अनेक तात्पर्य हैं। स्तन, जैसा पूर्व लिख आए हैं, सूर्य और चन्द्र के द्योतक हैं–'सूर्य-चन्द्रौ स्तनौ देव्याः।' परन्तु यहाँ काम-कला के सिद्धान्त से अग्नि और चन्द्र के द्योतक हैं–'स्तनौ दहन-शीतांशू।' सूर्य यहाँ मुख का द्योतक है। ऐसी काम-कला कहलानेवाली महा-त्रिपुर-सुन्दरी–कामेश-सदृश योगीश्वर की प्रेमिका है।

दूसरा तात्पर्य यह है कि 'स्तन' को पयोधर कहते हैं क्योंकि यह अमृत का 'खजाना' है। यह अमृत स्थूल-रूप में जीव को दूध देकर उसका पालन करता है और सूक्ष्म रहस्य के जाननेवालों को ज्ञान-रूपी अमृत का पान कराकर अर्थात् जीव और शिव की एकता का ज्ञान प्रदान कर अमर बनाता है। 'काम-कला' के रहस्य को कामेश्वर (काम एव ईश्वरो यस्य सः) के अतिरिक्त पूर्णतया कौन जान सकता है? अतएव कामेश्वर को भगवती का प्रेम होना स्वाभाविक है।

◆◆प्रार्थना◆◆

जिस प्रकार कामेश्वरी भगवती ने कामेश्वर पर-शिव के प्रेम-रत्न को अपने स्तन-मणि से बदल लिया है, ठीक उसी प्रकार भगवती श्रीललिताम्बा की कृपा से हमें अमृत अर्थात् शिवत्व की प्राप्ति हो।

***

(३४) श्रीनाभ्याल-वाल-रोमालि-लता-फल-कुच-द्वयी

नाभि-रूपी 'आलवाल' अर्थात् गमले की रोमावली-रूप लता के दोनों फल-स्वरूप स्तनवाली। दूसरे शब्दों में दोनों स्तन नाभि में उत्पन्न लता के ही दो फल हैं। नाभि से मणिपुर-चक्र का बोध होता है।

नाभि से कमल की उत्पत्ति योग-क्रिया द्वारा होती है। नाभि का इस पाञ्च-भौतिक शरीर में एक विशिष्ट स्थान है। यह हम सद्योजात बच्चे की नाभि से निकले स-नाल पद्म को देख कर प्रत्यक्ष

समझ सकते हैं, जिसके द्वारा गर्भस्थ बच्चे की श्वास-प्रक्रिया और पुष्टि होती है। इन सभी से नाभि की महत्ता सिद्ध होती है। इससे उत्पन्न रोमावली शारीरिक पुष्टि की द्योतक है। पूर्ण युवती होने पर ही रोमावली-रूपी लता सुस्पष्ट व पुष्ट होती है। इसी पूर्ण पुष्टि की द्योतक लता में फल उगता है। अतएव सूक्ष्म-भाव से यह **पूर्णत्व** की सूचक है।

'**नित्य पूर्णत्व**' से **अपचय-उपचय-रहिता** होने का बोध होता है। इससे **काल-परत्व** का बोध होता है क्योंकि महा-भाष्य के अनुसार **काल** की परिभाषा है कि जिससे पदार्थ का घटना और बढ़ना अर्थात् **उत्पत्ति, स्थिति** और **लय** का बोध होता है, वही काल है–

'येन मूर्तीनामुपचयाश्चापचयाश्च लक्ष्यन्ते तं कालमाहुः।'

◆◆प्रार्थना◆◆

हे श्रीललिताम्बा भगवती! हमारी कामनाओं की पूर्ति के लिए आप पुष्पवती जैसी सुशोभित हो रही हैं। आपकी कृपा से हमारी सभी कामनाएँ पूरी हों।

***

(३५) श्रीलक्ष्य-रोम-लता-धारता-समुन्नेय-मध्यमा

जानने योग्य रोमावली के निर्दिष्ट स्थान मात्र से ही प्रमाणित कमरवाली। लक्ष्य का तात्पर्य दृष्ट वा प्रकट से है। **रोम-लता** का स्थानत्व दृष्ट है। मध्यम-भाग अलक्ष्य है। इस हेतु इसका निरूपण केवल **रोम-लता** के स्थानत्व से ही होता है। रोम-लता लिङ्ग के प्रमाता-स्वरूप प्रति-कारणत्व का द्योतक है। यह प्रमाण से प्रमेय का ज्ञान कराता है। गौतम सूत्र '**बुद्धि-सिद्धिं तदसत्**' के तात्पर्य से भी इसका बोध होता है। '**मध्यम**' अङ्ग ऐसा अप्रकटित रहस्य-मय है कि प्रमाणों में अनुमान प्रमाण (युक्ति वा तर्क) से ही इसका बोध होता है।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! आपका मध्य-भाग (कटि-प्रदेश) अलक्ष्य रोमावली-मय अर्थात् सूक्ष्म एवं अवर्णनीय है। आपकी कृपा से अप्रकट रहस्य हमारे लिए उद्घाटित होते रहें।

***

(३६) श्रीस्तन-भार-दलन्मध्य-पट्ट-बन्ध-वलि-त्रया

स्तनों के भार से टूटती हुई-सी (झुकी) कमर में (सोने के) पत्र से बँधी **त्रि-वली** है जिसकी। इन स्तनों की पुष्टि या पूर्णता की उपमा '**आनन्द-लहरी**' (७) में **करि-कलभ-कुम्भ** से दी गई है। इसी से भगवती के रूप को '**कुचाभ्यामानम्रम्**' कहा है। इस साहित्यिक अतिशयोक्ति उत्प्रेक्षा अलङ्कार में गूढ़ आध्यात्मिक रहस्य छिपा है। यह तो सर्व-विदित है कि किसी अङ्ग की अति-मात्रिक वृद्धि अथवा कमी रूप को दूषित करनेवाली है। तो क्या भगवती का रूप स्तनों की '**बेतरह**' वृद्धि से दूषित है ? नहीं, यहाँ वाच्यार्थ से यथार्थ तात्पर्य का बोध नहीं हो सकता। सुन्दरता सूक्ष्मार्थ में है।

जैसा पूर्व कहा गया है, स्तन से **अमृत-भण्डार** का ही बोध होता है। **अमृत** विशुद्ध तत्त्व-गुणात्मक ही है। **सत्त्व-गुण** के बाहुल्य को **प्रपञ्च** का बाधक जानकर ही भगवती **'पट्ट-बन्ध-बलि-त्रया'** हो गई अर्थात् उसने अपने रूप को **त्रिगुणात्मक** कर दिया क्योंकि **प्रपञ्च** केवल एक **सत्त्व-गुण** से नहीं रह सकता। इसका **त्रिगुणात्मक** होना आवश्यक है।

◆◆प्रार्थना◆◆

अपने स्तनों के भार से झुकते हुए मध्य-भाग को पट्ट-बन्ध से बाँधनेवाली त्रिवली श्रीललिता भगवती, प्रमाद आदि से पतित होने के समय हमारे लिए सहारा बनें।

***

(३७) श्रीअरुणारुण-कौसुम्भ-वस्त्र-भास्वत्-कटी-तटी

कुसुम्भ पुष्प की लाली से अधिक लाल वस्त्र से शोभायमान कमर-भाग है जिसका। इससे **रजो-गुणात्मक,** अत्यन्त लाल तत्तत् अवयव-प्रसक्त भावनात्मक, वृत्ति-विषय-द्योतक वस्त्र से कटि-प्रदेश अर्थात् मध्य भाग **रजो-अंश** से शोभायमान है।

भाव यह है कि शरीर तीन भागों में विभक्त है। ऊर्ध्व-भाग **सत्त्वांश** है, मध्य भाग **रजो-अंश** और अधो भाग **तमो-अंश** है।

यह श्रुति में कथित **'स्व-गुणैर्निगूढ़ां'** भाव का द्योतक है। शरीर के आच्छादक चर्म (त्वचा) के सदृश ही बाह्य नैमित्तिक आवरण का द्योतक **वस्त्र** है। नैमित्तिक आवरण से तात्पर्य है–किसी कारण-वश ही किञ्चित् काल के ही हेतु (नित्य नहीं) स्वेच्छाऽऽच्छादन से। यह कारण है प्रपञ्च का। अन्यथा **पराम्बा नित्य आवरण-रहिता** हैं।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे भगवती श्रीललिता! आपने हम भक्त-जनों के उद्धार के लिए, उन्नत कर हमें अपनाने के लिए ही लाल-लाल कौसुम्भी वस्त्र से अपनी कटि-तटी कमर बाँध रखी है। कृपया हमारा उद्धार करिए, हमें उन्नत करिए।

***

(३८) श्रीरत्न-किङ्किणिका-रम्य-रशना-दाम-भूषिता

रत्नों की छोटी-छोटी घुँघरुओं (घण्टिकाओं) से शोभित **कमर-कस (मेखला) की माला** से अलंकृता। इस आभूषण से भी आध्यात्मिक दृष्टि से धर्मी भगवती के एक धर्म का ही बोध होता है। **'रत्न'** (रम् +उणादि +न) रमण या क्रीड़ा का द्योतक है। **'किङ्किणिका'** क्षुद्र घण्टिका को कहते हैं। **श्रुति** भी कहती है–**'सर्व-वाद्य-मयी घण्टा'**। इन घण्टिकाओं की माला से सभी प्रकार के **असंख्य नादों को उत्पन्न करनेवाली शक्ति** से तात्पर्य है।

श्रुति भी कहती है कि **सहस्र-कोटि नाद** हैं, जो **ब्रह्म-प्रणव** नामक नाद से उत्पन्न होते और उसी में लीन होते हैं (नाद-विन्दूपनिषत्, ५०)–

नाद-कोटि-सहस्त्राणि, विन्दु-कोटि-शतानि च।
सर्वे तत्र लयं यान्ति, ब्रह्म - प्रणव - नादके।।

तात्पर्य यह है कि **पर-विन्दु-स्वरूपिणी** पराम्बा असंख्य नादों से विभूषिता होकर विश्व के घट-घट में रमण करती हैं।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! सृष्टि के पूर्व जब न सत् था न असत् था, तब सद्-विलक्षणा रत्न-किङ्किणी क्षुद्र-घण्टिकाओं-जैसी बजनेवाली घुँघरुओं से पूर्ण रमणीय आप ही विराजमान थीं। आपकी शरण हमें सदा प्राप्त होती रहे।

***

(३९) श्रीकामेश-ज्ञान-सौभाग्य-मार्दवोरु-द्वयान्विता

जिसके **ऊरु-द्वय** अर्थात् नितम्बों की कमनीयता और कोमलता का ज्ञान **कामेश्वर** मात्र को है। नितम्ब से आध्यात्मिक तात्पर्य **हकार** की **अर्द्ध-कला** से है क्योंकि कुच-द्वय के नीचे के भाग को '**हरार्द्ध**' कहते हैं–

मुखं विन्दुं कृत्वा कुच-युगमधस्तस्य तदधो।
हरर्द्धं ध्यायेद् यो हर-महिषि! ते मन्मथ-कलाम्।।

इसकी कोमलता अर्थात् ज्ञान के सूक्ष्मत्व का भान **योगीश्वर कामेश** के अतिरिक्त और किसको हो सकता है ?

◆◆प्रार्थना◆◆

जिनके सौन्दर्य और मृदुलत्व को एक-मात्र कामेश्वर पर-शिव ही जानते हैं, ऐसी अनिवर्चनीय सौन्दर्यवाली माता श्रीललिताम्बा मुझ पर सदा प्रसन्न रहें।

***

(४०) श्रीमाणिक्य-मुकुटाकार-जानु-द्वय-विराजिता

लाल रङ्ग की मणि के मुकुट के आकार के सदृश **जानु-द्वय** अर्थात् दो घुटनोंवाली भगवती **सर्वाङ्ग**-तया सिन्दूर-वर्ण की हैं। अतः इनके घुटने भी **माणिक्य** के सदृश लाल और चमकीले हैं। चमकीले से **सर्वाङ्ग-ज्योतिर्मयी** हैं, ऐसा बोध होता है। '**मुकुटाकार**' से ऊपर मोटा और नीचे क्रमिक पतला होने का बोध होता है। इसी से **घनी-भूता शक्ति** के **विकासोन्मुख** पतले होने का बोध होता है।

◆◆प्रार्थना◆◆

सर्वाङ्ग ज्योतिर्मयी भगवती श्रीललिताम्बा! हमें प्रति-दिन अधिक-से-अधिक सुन्दर, स्निग्ध तथा स्वच्छ एवं चमकदार बनाएँ।

***

(४१) श्रीइन्द्र-गोप-परिक्षिप्त-स्मर-तूणाभ-जङ्घिका

इन्द्र-गोप से खचित (जड़े) काम-देव के तरकस के सदृश जङ्घावाली। इन्द्र-गोप का रौढ़िक अर्थ है एक प्रकार का लाल चमकीला कीड़ा और योग-रौढ़िक अर्थ है महती ज्योति का रखनेवाला–'इन्द्रां=महतीं, पाति रक्षतीति इन्द्र-गोपः।' इससे भगवती का अधो अङ्ग भी 'ज्योतिषां जयोतिः' अर्थात् परं-ज्योति का बोधक है। 'स्मर-तूणाभ' से कामेश के वाणों के खजाने वा शास्त्रागार का बोध होता है। यह स्वाभाविक है कि योद्धा अपने रहने के स्थान से संलग्न ही अपना शस्त्रागार रखता है।

◆◆प्रार्थना◆◆

जिन भगवती ललिताम्बा का अधो अङ्ग परं-ज्योति का बोधक है, उनकी कृपा से कामदेव की लीला का उल्लास हमारे लिए सदा विकसित होता रहे।

***

(४२) श्रीगूढ़-गुल्फा

गूढ़ से तात्पर्य है छिपे–मांस से छिपे हुए का। इससे पसलियों (गुल्फों) की पुष्टि का बोध होता है।

◆◆प्रार्थना◆◆

जिससे गूढ़ व्यञ्जना समुल्लसित होती है, जिससे भावों का विकास होता है, ऐसी भगवती कामेश्वरी श्रीललिताम्बा सदा हमारे चित्त में प्रकाशित हों।

***

(४३) श्रीकूर्म-पृष्ठ-जयिष्णु-प्रपदान्विता

कछुए की पीठ को मात करनेवाले 'प्रपदों' अर्थात् तलवों के ऊपरी भागों से युक्ता है। 'जयिष्णु' का प्रयोग 'विष्णु' और 'भ्राजिष्णु' के सदृश उचित ही है। वैयाकरण लोग प्रयोग की ही शरण लेते हैं, जैसा कि भास्कर राय कहते हैं–'प्रयोग-शरणा वैयाकरणाः।'

भाव यह है कि प्रपद-द्वय ऐसे पुष्ट हैं कि कूर्म-पृष्ठ को भी पुष्टि में न्यून करनेवाले हैं अर्थात् ब्रह्म का चतुर्थ अविद्या-पाद भी अचित् पाद से नित्य-संयोग-सम्बन्ध से युक्त होने से पुष्ट है।

◆◆प्रार्थना◆◆

जिनके चरण को शरण बनानेवाले कठिन-से-कठिन विपदाओं को जीत लेते हैं, उन भगवती श्रीललिताम्बा की कृपा हमें सदा प्राप्त होती रहे।

***

(४४) श्रीनख-दीधिति-सञ्छन्न-नमज्जन-तमो-गुणा

नखों की किरणों से ढाँक दिया गया है प्रणाम करनेवालों का तमो-गुण (अज्ञान) जिनसे, ऐसे नखोंवाली।'आनन्द-लहरी' में भगवती के चरणों की महिमा का वर्णन करते हुए कहा है कि जहाँ अन्य देवता हाथों की अभय-मुद्रा दिखाकर अपने शरणागतों की रक्षा (सबसे बड़े अज्ञान से) करते हैं, वहाँ तुम्हारे दोनों चरण ही इस कार्य में निपुण हैं।

यही **रक्षक गुण** यहाँ **भगवती** के चरण के एक क्षुद्र अंश नखों में कल्पित है। यह कल्पना समीचीन है क्योंकि नख ऐसे चमकीले हैं कि निर्मल दर्पण के सदृश हैं। जो **भगवती** का नमन करते हैं, वे अपने रूप का बिम्ब इन नखों में देखते हैं। अपने रूप से तात्पर्य है–स्वरूप से अर्थात् असली रूप से। यह स्वयं सिद्ध है कि जो अपना स्वरूप देखते हैं, उनकी **अविद्या** का नाश हो जाता है अर्थात् उन्हें **ब्रह्मैक्य** का ज्ञान होता है। **नमन** व **प्रणाम** का सूक्ष्मार्थ ही है संवेश (आनन्द लहरी)–'**प्रणामः संवेशः सुखमखिलमात्मार्पणः**'। जहाँ संवेश हुआ, वहाँ अज्ञान कहाँ?

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! तू निर्भय हो, कहीं से भी जिसे भय न हो, ऐसा बनकर रह और भगवती श्रीललिताम्बा को प्रणाम कर यथेष्ट विहार कर। तेरी रक्षा के लिए अपने चरण-नखों की कान्ति से अन्धकार को दूर करनेवाली भगवती श्रीललिताम्बा हैं।

***

(४५) श्रीपद-द्वय-प्रभा-जाल-परा-कृत-सरोरुहा

पाद-युगल की ज्योति वा सुन्दरता इत्यादि गुण-समूह से कमल लज्जित हुआ है, ऐसे **पाद-युगलवाली**। साहित्यिक दृष्टि से इसे अत्युक्ति अलङ्कार कहेंगे, परन्तु आध्यात्मिक दृष्टि से इसमें अलङ्कार का नाम नहीं है क्योंकि उक्त कथन यथार्थ है, कारण **पाद-द्वय** से **ब्रह्म** के '**विद्या**' और '**आनन्द**' इन दो पादों से तात्पर्य है। **कमल** (कम्+लच्) कामना-द्योतक होने से **अविद्या-पाद** का द्योतक है। इस भाव के अनुसार **कमल** वा **अविद्या-ब्रह्म-रूपिणी** के **विद्या-पाद** के समक्ष तुच्छ है, ऐसा बोध होता है।

◆◆प्रार्थना◆◆

जिन भगवती श्रीललिताम्बा के चरण कमल की कान्ति को जीतनेवाले हैं, वे हमें संसार में रहते हुए ऊँची-से-ऊँची भावनाएँ सदा प्रदान करती रहें।

***

(४६) श्रीशिञ्जान-मणि-मञ्जीर-मण्डित-श्रीपदाम्बुजा

शब्द करनेवाले '**मणि**' अर्थात् लाल रत्न के **नूपुरों** (पैजनियों) से शोभित हैं–श्रीपाद-कमल जिसके। हीरा आदि रत्न मणि वा माणिक्य से बहु-मूल्य होते हुए भी **पराम्बा** के आभूषणों में स्थान नहीं पा सके क्योंकि वे रक्तातिरक्त वर्णवाले हैं। **भगवती** स्वयं **रक्त-वर्णा** हैं और उनके वस्त्र तथा आभूषण भी सब **रक्त-वर्ण** के ही हैं। '**शिञ्जान**' से **अनवरत ध्वनि** से तात्पर्य है। इससे **ध्वन्यात्मक संसार** का बोध होता है।

संसार वा जगत् का अर्थ ही है **सञ्चालन-क्रिया** और ये **नूपुर** भी इसी सञ्चालन में ध्वनि करते हैं। जिस प्रकार **नूपुर** सञ्चालित न होने पर ध्वनि वा शब्द नहीं करते, उसी प्रकार संसार अपनी **सञ्चालन-क्रिया** के रुक जाने पर अर्थात् **प्रलय** होने पर ध्वनि से रिक्त हो जाता है। तात्पर्य यह कि **भगवती** के **श्री-पद** अर्थात् विभूति-पाद **नाद-कला** से विभूषित हैं।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! भगवती श्रीललिताम्बा के पादाम्बुज बजते हुए मणि-जटित सुवर्ण नूपुरों से सुशोभित हैं। तुम इनका ध्यान करते हुए महान् एवं मधुर भाषी बनो।

***

(४७) श्रीमराली-मन्द-गमना

'मराली' अर्थात् हंसी के सदृश मन्द अर्थात् धीरे-धीरे चलनेवाली। **मत्त-गज-गामिनी** न कहकर आध्यात्मिक भाव-द्योतक 'हंस-गामिनी' कहा है। भगवती हंस-रूप में भी हैं। इसके **सकलान्तरात्मा**-रूप (पद) को हंस कहते हैं। **पराम्बा** की चार प्रकार की स्थितियाँ हैं–१. **पिण्ड** अर्थात् कुण्डली, २. **पद** अर्थात् हंस, ३. **रूप** अर्थात् विन्दु और ४. **रूपातीत** अर्थात् अनुपहित चेतना। यथा (स्वच्छन्द-संग्रह)–

पिण्डं कुण्डलिनी-शक्तिः, पदं हंसः प्रकीर्तितः।
रूपं विन्दुरिति ख्यातं, रूपातीतस्तु चिन्मयः।।

इस **हंस** की **मन्द-गति** का ज्ञान प्रायः प्रत्येक सच्चे साधक को होता है।

◆◆प्रार्थना◆◆

मेरी सुषुम्णा-रूपी सरस्वती के छहों चक्रों में क्रम से परिभ्रमण कर, उनमें ओत-प्रोत होकर, राज-हंसी के समान मन्द-मन्द गमन करनेवाली शाम्भवी-शक्ति, आत्म-शक्ति-कुण्डलिनी-स्वरूपा भगवती श्रीललिताम्बा की कृपा से मुझमें आरोहण-अवरोहण करें।

***

(४८) श्रीमहा-लावण्य-शेवधि

'**शेवधि**' अर्थात् निधि वा खजाना। '**शेवधि**'-शब्द पुल्लिङ्ग है, परन्तु समास से यहाँ स्त्री-लिङ्गान्त प्रयोग है। **भगवती** की एक संज्ञा **महा-त्रिपुर-सुन्दरी** है, जो **महा-लावण्य-कालिका** कही जाती हैं। **कालिका** के दो मुख्य भेद हैं–१. **नारायणी-काली**, २. **रक्त-काली** (सुन्दरी)–'इयं नारायणी काली, तारा स्यात् शून्य-वाहिनी। सुन्दरी रक्त-कालीयं' (वृहन्नील तन्त्र)।

तन्त्रान्तर में भी है–

कालिका द्विविधा प्रोक्ता, कृष्णा-रक्ता प्रभेदतः।
कृष्णा तु दक्षिणा प्रोक्ता, रक्ता तु सुन्दरी मता।।

महा-सुन्दरी का आध्यात्मिक तात्पर्य है कि **विश्व-प्रेम** की मूर्ति **कामेश्वरी**–'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'-रूपिणी सम्पूर्ण विश्व को अपनी सुन्दरता से ओत-प्रोत करके अपने सच्चे उपासकों के **जगद्-विभीषिका-भाव** को हटाती है। इसके सच्चे उपासक (**ब्रह्म-वित्**) इसकी **पञ्च-दशाक्षरी विद्या** के यथार्थ अर्थ 'तत् त्वमसि' के रहस्य-ज्ञान से विश्व के प्रत्येक कुत्सित-से-कुत्सित प्रदार्थ में भी महा-सुन्दरी का सौन्दर्य ही देखकर आनन्द-विभोर होते हैं–

आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान्, न विभेति कदाचन (श्रुति)।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! संसार में सौन्दर्य की कलाओं का जो-जो उल्लास, जहाँ-कहीं भी हुआ दिखाई पड़ता है, वह सब लावण्य की महा-निधान-भूता आप ही से होता है। आपकी कृपा से मुझमें भी सौन्दर्य की कलाओं का निरन्तर आविर्भाव होता रहे।

***

(४९) श्रीसर्वारुणा

सब प्रकार से लाल-ही-लाल। तात्पर्य यह है कि वर्ण भी लाल, वस्त्र भी लाल और जितने आभूषण हैं, वे भी लाल ही हैं। इससे, जैसा कि '**काम-धेनु तन्त्र**' कहता है, इसका **सत्त्व-गुणात्मिका** होते हुए भी **रजो-गुण-प्रधाना** होना ज्ञात होता है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! जो भक्त-जन आपकी सर्वारुणा अर्थात् सिन्दूरी कान्ति से चमकती हुई प्रभाओं से व्याप्त भूमि और आकाश को देखते हैं, वे अपने चारों ओर के समस्त परिवेश को वशीभूत कर लेते हैं, इसमें सन्देह नहीं।

***

(५०) श्रीअनवद्याङ्गा

अनिन्द्य अङ्गवाली अर्थात् इसके चारों रूप-**१. अविद्या, २. विद्या, ३. आनन्द** और **४. तुरीय**, सभी अनिन्द्य हैं। इससे **अविद्या**-पाद का अनिन्द्य होना सिद्ध होता है क्योंकि **अविद्या** में भी उपहित चेतना होती है।

◆◆प्रार्थना◆◆

जिन भगवती की लीला मात्र से भुवनों की रचना हुई है, जो विश्व की जननी हैं, उन भगवती श्रीललिताम्बा की कृपा से हमारे नेत्रों की दृष्टि सदा निर्दोष रहे।

***

(५१) श्रीसर्वाभरण-भूषिता

सब आभूषणों से सज्जिता। **मूला धर्मी शक्ति** स्वभावतः सब आभरणों अर्थात् धर्मों से युक्त है। **धर्मी शक्ति** का अर्थ ही यही है, जिसे **शैव** और **मिश्र शाक्त-शैव** शक्तिमान् कहते हैं।

◆◆स्तुति◆◆

संसार में सभी को ऊँच-नीच, बड़े-छोटे, सुरूप-कुरूप आदि का भेद-भाव छोड़कर स्वीकार करो, अपनाओ और बनाए रखने का यत्न करो। ऐसे उपदेश देने के लिए ही भगवती श्रीललिताम्बा बहु-मूल्य मणि-मौक्तिकादि विशिष्ट तथा सुवर्ण, रजत आदि साधारण स्वरूपवाले सभी आभरणों से भूषित होकर जय पा रही हैं।

***

(५२) श्रीशिव-कामेश्वराङ्कस्था

विन्दु-रूपिणी भगवती-नाद-रूपी शिव के अङ्क में अर्थात् ऊपर ही रहती हैं। ध्यान से भी यही सिद्ध है। 'आनन्द-लहरी' में कथित 'परम-शिव-पर्यङ्क-निलया' से इसी भाव का समर्थन होता है। 'काम-कला-विलास तन्त्र' में भी इसे 'कामेश्वराङ्क-निलया' कहा है। भगवती-विन्दु में अर्थात् परमाकाश में रहती हैं। यह विन्दु या परमाकाश नाद वा सदा-शिव के ऊपरी प्रदेश में है।

अथवा शिव का अर्थ है-प्रज्ञान अर्थात् प्रकर्ष श्रेष्ठ ज्ञान। श्रुति कहती है-

यदेतत् हृदयं मनश्चैतत् संज्ञानमज्ञानम्।
विज्ञानं. प्रज्ञानं मेधा दृष्टिर्धृतिर्मतिर्मनीषा।।
जूतिः स्मृतिः सङ्कल्पः क्रतुरसूः कामो वश।
इति सर्वाण्येवैतानि प्रज्ञानस्य नाम-धेयानि भवन्ति।।

इससे प्रज्ञानात्मा में रहनेवाली अन्तरात्मा-स्वरूपिणी परमात्मा का बोध होता है।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! आप तो कामेश्वर शिव के अङ्क-स्थिता हो। अतएव आपकी कृपा से हमें शिवत्व की प्राप्ति हो।

***

(५३) श्रीशिव

यही शिव है। शिव के अनेक अर्थ हैं। जिसमें सब (विश्व) रहे, उसे शिव कहते हैं- 'शेतेऽस्मिन् सर्वमिति शिवः।' शोभन गुणों से युक्त को भी शिव कहते हैं-

शिवाः शोभना गुणा अस्यां सन्ति।

'श्रुति' की परिभाषा है-'यो योनिं योनिमधितिष्ठति, एको यस्मिन्निदं सच्च विच्चेति।' सारांश यह कि शिव और शिवा से परमात्मा का ही बोध होता है-

परमात्मा शिवः प्रोक्तः, शिवा सैव प्रकीतिता।

यहाँ शिव से पर-शिव से तात्पर्य है, अपर-शिव से नहीं।

◆◆स्तुति◆◆

हे भगवती श्रीललिताम्बा! आप शिव अर्थात् कल्याण की आधार हो, प्रणत लोगों को आप शिवत्व प्राप्त कराती हो, शिव से आपका अभेद है। अतः विद्वान् तथा देव-गण आपको सर्वथा कल्याण-मय विशुद्ध अन्तः-करणवाली शिवा कहते हैं।

***

(५४) श्रीस्वाधीन-वल्लभा

जिसके अधीन उसका वल्लभ अर्थात् स्वामी है। इससे स्वतन्त्र परमा शक्ति का बोध होता है। उसका तथा-कथित स्वामी उसी के अधीन रहता है। जिस प्रकार इसके आद्या-रूप में इसे काल-

शक्ति (काल एव शक्तिर्यस्याः सा) कहते हैं अर्थात् इसके इच्छानुकूल ही काल चलता है, उसी प्रकार इस रूप में भी कामेश्वर इसके अधीन ही रहते हुए चलते हैं। इस भाव का समर्थक है शिव का भगवती का क्रिया-शक्ति-स्वरूप होना।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! अपने पुरुषार्थ को प्रकृति से पर, दूर, ऊँचा, उत्कृष्ट समझने का पाखण्ड मत करो, अन्यथा स्वाधीन-वल्लभा भगवती श्रीललिताम्बा तुम्हारे पाखण्ड को चूर-चूर कर देगी।

***

(५५) श्रीसुमेरु-मध्य-शृङ्गस्था

पाठान्तर है 'सुमेरु-शृङ्ग-मध्यस्था' अर्थात् सुन्दर मेरु पर्वत के शिखर के मध्य में रहनेवाली। ये शिखर पाँच शक्ति-त्रिकोणों और चार शिव-त्रिकोणों के द्योतक हैं। इनके मध्य में विन्दु है, जिसमें भगवती रहती हैं। इसका ज्ञान श्री-चक्र के सङ्केत-ज्ञान से ही हो सकता है। यह श्री-चक्र का महा-मध्य स्थान है, जो महा-आनन्द-वन है–

महा-मध्यं च चक्रस्य, महाऽऽनन्दात्मकं पुनः।

◆◆स्तुति◆◆

हे ईश्वरि श्रीललिताम्बा! आप विष्णु, ब्रह्मा और शिव–इन् तीन मुख्य देवों के भी ऊपर जो तुरीय पद है, वहाँ स्थिता हो। इस बात को स्पष्ट करने के लिए ही सुमेरु-पर्वत, जो भूमि पर सबसे ऊँचा देव-स्थान है, उसके सर्वोन्नत शिखर पर आप स्थिता हो। आपकी जय हो।

***

(५६) श्रीश्रीमन्नगर-नायिका

'श्रीनगर' की स्वामिनी। यह नगर श्रीविद्या के होने से 'श्रीनगर' कहलाता है। यह नगर भी दो हैं–१. मेरु-शृङ्ग के मध्य में और २. सुधा-सागर के रत्न-द्वीप में अर्थात् एक समष्टि या ब्रह्माण्ड के ऊपर सुधा-सागर के मणि-द्वीप में है और दूसरा है व्यष्टि के सुमेरु-शृङ्ग पर अर्थात् सहस्रार में। इस नगर को 'अयोध्या-पुरी' भी कहते हैं, जिसमें 'हिरण्य-कोश' है, जिसे स्वर्ग-लोक भी कहते हैं, जो ज्योति से घिरी हुई है (तैत्तिरीयारण्यक)–

अष्ट - चक्रा नव - द्वारा देवानां पुरयोध्या।
तस्यां हिरण्मयः कोशः स्वर्गो लोको ज्योतिषावृतः।।

यह इन्द्रादि देवताओं के पूज्यत्व से सम्बन्धिनी श्रीविद्या-नगरी है। इसी नगर अर्थात् श्री-चक्र की बाह्य पूजा के सम्बन्ध में 'तैत्तिरीयारण्यक' कहता है कि ऋषि के सहित श्री-चक्र की बाह्य पूजा करना उचित नहीं है–'नैतमृषिं विदित्वा नगरं प्रविशेत्।' इसे ब्रह्म-पुरी भी कहते हैं।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! श्रीमत् श्रीवाले नगर की अधीश्वरी मानते हुए, जो आपका अङ्ग-देवियों तथा आवरण देवताओं के सहित ध्यान करता है, वह राजा अर्थात् सर्व-गुण-सम्पन्न बन जाता है।

***

(५७) श्रीचिन्तामणि-गृहस्था

'**चिन्तामणि**' नामक मणियों से बने घर का रहस्यार्थ है–चिन्तित अर्थ-प्रद स्थान अर्थात् जिस भाव से जो चिन्ता या ध्यान करता है (इस स्थान में रहनेवाली का), उसे वैसा ही फल मिलता है।

'**गौड़-पादीय सूत्र-भाष्य**' में इसका दूसरा रहस्यार्थ यह दिया है कि '**सर्वेषां चिन्तितार्थ-प्रद मन्त्राणां निर्माण-स्थानं तदेवेति तस्य चिन्ता-मणि-गृहत्वं**' अर्थात् सब मन्त्रों के चिन्तित या अभीष्ट फल को देनेवाला उत्पत्ति-स्थान। इसी से '**चिन्ता-मणि-गृह**' की सार्थकता है।

'**चिन्ता**' का अर्थ है–'**यावन्मनसो गतिः**' अर्थात् मन की गति। इस प्रकार '**चिन्ता-मणि**' का अर्थ है–'**यावन्मनसो गतं तत्रास्य यथा-कामाचारो भवति**' (छान्दोग्योपनिषत्)।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! जो भक्त-जन आपको मूँगे के पुञ्जों के समान अरुण कान्तिवाली ध्यान करते हैं, उन्हें अत्यन्त गुप्त चिन्ता-मणि-गृह के भीतर विराजती हुई आप अपना सायुज्य देती हो।

***

(५८) श्रीपञ्च-ब्रह्मासन-स्थिता

पाँच ब्रह्माओं से निर्मित आसन पर बैठी हुई। **ब्रह्मा** एक है (एक ब्रह्माण्ड में), पाँच नहीं। अतः **ब्रह्मा** आदि **पञ्च-भूताधिपों** से यहाँ तात्पर्य है। ऐसा ही **भगवती** के ध्यानों से भी बोध होता है। 'आनन्द-लहरी' के ८वें पद्य में भी ऐसा ही उल्लेख है। '**भैरव-यामल**' भी कहता है–

शिवात्मके महा-मञ्चे, महेशानोपवर्हणे।
अति-रम्य-तले तत्र, कसिपुश्च सदा-शिवः।
भृतकाश्च चतुष्पादा, महेन्द्रश्च एतद् ग्रहः।
तत्रास्ते परमेशानी, महा - त्रिपुर - सुन्दरी।।

इसका आध्यात्मिक तात्पर्य है कि **भगवती पञ्च-ब्रह्म से अतीता हैं।**

◆◆स्तुति◆◆

हे अम्ब! पाँचों तत्त्व (१. पृथ्वी, २. जल, ३. तेज, ४. वायु और ५. आकाश), इनके स्थूल-सूक्ष्म-रूप तथा सूक्ष्माति-सूक्ष्म बीज-भूत तन्मात्राएँ, ये सब आपके त्रि-गुण-मय पद से ही प्रवृत्त हुए हैं। ऐसी शिक्षा देने के लिए ही आप पञ्च-ब्रह्म आसन पर विराजमान होती हो।

***

(५९) श्रीमहा-पद्माटवी-संस्था

बड़े-बड़े कमलों के वन में रहनेवाली अथवा बड़े कमल-वन में रहनेवाली। श्री-नगर के सदृश यह भी दो हैं–१. समष्टि अर्थात् ब्रह्माण्ड के ऊपर सुधा-सागर का महा-कमल-वन, २. व्यष्टि में शिरस्थ 'सहस्त्र-दल-कमल'। 'स्वच्छन्द तन्त्र' में लिखा है–

तस्मादूर्ध्व-कुलं पद्मम्, सहस्त्रारमधो-मुखम्।

यह ब्रह्माण्ड और पिण्ड दोनों की एकता का बोधक है–

महा-पद्म-वनं चेदं, समानं तस्य चोपरि।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! कभी तो आप अपने चक्र में विराजित होकर, भक्त-जनों को संसार-सागर से पार कराती हो और कभी अत्यन्त उत्कण्ठित भक्तों को महा-पद्माटवी में विहार करती हुई सिद्ध-महात्मा बनाकर अपनाती हो।

***

(६०) श्रीकदम्ब-वन-वासिनी

कदम्ब-वन में रहनेवाली। 'कदम्ब-वन' का अर्थ है–'शक्ति-समूह' अर्थात् 'चक्र'। यह 'चक्र' भगवती की नैसर्गिक स्फुरत्ता है, जिससे 'चक्र' वा 'कदम्ब-वन' की उत्पत्ति होती है–

यदा सा परमा शक्तिः, स्वेच्छया विश्व-रूपिणी।
स्फुरत्तामात्मनः पश्येत्, तदा चक्रस्य सम्भवः।।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे कदम्ब-वन-वासिनी भगवती श्रीललिताम्बा! जो साधक कदम्ब वृक्ष के नीचे आसन लगाकर सुन्दर-से-सुन्दर कदम्ब के पुष्पों से आपका पूजन करता है अथवा कदम्ब पुष्पों से बनी हुई कादम्बरी अर्पित कर आपका मन्त्रादि जपता है, उसको आप प्रत्यक्ष होकर अनेक सुखद वर देवें।

***

(६१) श्रीसुधा-सागर-मध्यस्था

सुधा-सागर में रहनेवाली। यही 'श्रुति'-कथित 'अमृतावरण' है–'अमृतेनावृतां पुरीम्।' यह व्यष्टि या पिण्डाण्ड में ब्रह्म-रन्ध्र-स्थित विन्दु में है। अथवा सहस्त्रार की कर्णिका-स्थित सोम-मण्डल से ऊपर अमा-कला में है। यह सुधा-ज्ञान यथार्थ ज्ञान का द्योतक भी है, जिसके पीने अर्थात् होने से जीव अमर हो जाता है और स्व-शिवत्व का ज्ञान हो जाता है।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! सुधा-सागर के मध्य में विराजमान और सखियों द्वारा स्नान करते हुए आपका जो ध्यान, पूजन करता है, उसे आपकी कृपा से सभी प्रकार के ज्वरों पर विजय प्राप्त हो।

***

(६२) श्रीकामाक्षी

व्युत्पत्ति-भेद से इसके अनेक अर्थ हैं। '**कामे कमनीये अक्षिणी यस्याः सा**'–अर्थात् कमनीय वा सुन्दर जिसकी आँखें हैं, परन्तु यहाँ '**काम एव अक्षो यस्या सा**'–**कामेश्वर** ही जिसकी आँखें हैं, ऐसा तात्पर्य अधिक ठीक है। इससे **कामेश्वर** और **पराम्बा** के **विमर्श**-स्वरूप का बोध होता है। यह **शुद्ध शक्ति-वाद** है।

शैव और **मिश्र शक्ति-शिव** सिद्धान्तवाले '**प्रकाश-शक्ति**'–**कामेश्वर** को और '**विमर्श-शक्ति**'– **कामेश्वरी** को बताते हैं। यह **शुद्ध शक्ति-वाद** के विरुद्ध है और अयुक्त भी है क्योंकि **शक्ति** और **शक्ति-मान्** में, जो उन्हीं का सिद्धान्त है, **शक्ति** की श्रेष्ठता वे भी स्वीकार करते हैं। ऐसी दशा में यदि '**प्रकाश-शक्ति**'–**कामेश्वरी भगवती** नहीं हुईं, तो **कामेश्वर** कैसे हुए ?

◆◆प्रार्थना◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! आपकी दृष्टि कमनीय और काम पूरण करनेवाली है। इन्हीं काम-वत् कमनीय और काम-प्रद अक्षियों से आपने देवताओं को दया-पूर्ण देखते हुए सभी कार्य पूरे किए हैं। आपका कामाक्षी-नाम मेरा भी कल्याण करे।

***

(६३) श्रीकाम-दायिनी

अभीष्ट सिद्ध करनेवाली। इसकी अनेक व्युत्पत्तियाँ हैं। '**कामान् मनोरथान् ददातीति काम-दायिनी**'–अर्थात् मनोरथ को पूर्ण करनेवाली अथवा '**कामं मन्मथं द्युति खण्डयति कामदः शिवस्तेन अयिनी शुभावह-विधि-मती**'–काम के नाश करनेवाले **शिव** से '**अयिनी**' अर्थात् शुभ-सूचक विधि (सौभाग्य) रखनेवाली। अथवा '**कामेन दाय-वती**' अर्थात् **कामेश्वर** से अनादि-काल से सिद्ध प्रकृतिवाली।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे लोक-माता श्रीललिताम्बा! आप शुद्ध कामनाओं को पूर्ण करती हो तथा विषयाभिलाष और वासना-रूप काम को नष्ट करती हो। हम भक्त-जनों का भाग्य भी सुखकर एवं शुभ बनाओ।

***

(६४) श्रीदेवर्षि-गण-सङ्घात-स्तूयमानाऽऽत्म-वैभवा

देव-गण और **ऋषि-गण** के समुदाय द्वारा अथवा अनेक प्रकार से स्तुता स्वरूप-वैभववाली। यह '**समस्त पद**' एक नाम है, परन्तु इस '**पद**' से दो नामों का भी बोध हो सकता है, जब कि '**आत्म-वैभवा**' को पृथक् करेंगे। '**आत्म-वैभवा**' अर्थात् अन्य की अपेक्षा के भाव से रहिता। **भगवती** का विभव अपना ही है, दूसरे से प्राप्त नहीं है।

इससे सर्व-श्रेष्ठता और निर्द्वन्द्वता का बोध होता है। 'देव' से ब्रह्मादि-देवताओं का, 'ऋषि' से वसिष्ठादि ऋषियों का और 'देवर्षि' से नारदादि देवर्षियों का बोध हो सकता है।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! सभी देव एवं ऋषि-गण आपके वैभव, प्रभुता की स्तुति करते हैं। लोक में धर्म की स्थापना के लिए आप प्रकट हों।

***

(६५) श्रीभण्डासुर-बधोद्युक्त-शक्ति-सेना-समन्विता

'भण्ड' नाम के असुर को मारने को प्रस्तुत अपनी शक्ति-रूप बल से युक्ता। भण्ड की उत्पत्ति शिव द्वारा काम के भस्म होने पर हुई, ऐसी पौराणिक कथा है।

'भण्ड' के अनेक अर्थ हैं। 'भण्ड भड्' (उपहास) धातु में 'अच्' जोड़ने से बना है, जिससे इसका एक अर्थ 'उपहास-कारक' है। काम के भस्म किए जाने पर भी जब वह नष्ट नहीं हुआ, तब वही महादेव का उपहास करने लगा।

बात ठीक है, वृक्ष भस्म हो गया, परन्तु बीज और अधिक सबल हो गया। यह तो सभी जानते हैं कि धातु से धातु-भस्म अधिक गुणवती होती है। महा-देव ने क्रोध से काम का ज्ञान (चक्षु) द्वारा नाश किया, परन्तु सर्वथा नाश नहीं कर सके क्योंकि ज्ञान अथवा क्रोध से (उससे घृणा करके) काम का नाश नहीं हो सकता। ऐसा करने से वह केवल दब जाएगा और बीज-रूप में वर्तमान ही रहेगा तथा अवसर पाकर पुनः-पुनः प्रकट होगा। अतएव इस अपर-काम वा अपर-वासना को हटानेवाली केवल पर-काम की ईश्वरी ही है। यह अपर-काम वा तुच्छ वासना को विशुद्ध वासना के द्वारा, जो 'श्रुति' के मत से मोक्ष-दायिनी है, रूपान्तरित कर देती है।

श्री ललितोपासना का मधुराति-मधुर भाव यही है कि वह अपने उपासकों के रजो-गुणात्मक काम को अपने मधुर और सौन्दर्य-भाव द्वारा विशुद्ध निष्काम एवं त्याग-मूलक प्रेम-विश्व-प्रेम में परिवर्तित कर देता है। यही 'भण्ड' असुर के वध का 'आध्यात्मिक रहस्य' है।

'शक्ति-सेना' से श्रीचक्र-स्थित ब्राह्मी आदि आठ शक्तियों, कामाकर्षिणी आदि सोलह शक्तियों, सर्व-संक्षोभिणी आदि चौदह शक्तियों और वशिनी आदि आठ शक्तियों से तात्पर्य है। 'शक्ति-सेना-समन्विता' से स्पष्ट-तया भगवती पराम्बा का 'धर्मी शक्ति' अर्थात् शक्ति-मती होना सिद्ध है। इस शक्ति-सेना के नायक या सेनापति कामेश्वर हैं, परन्तु श्री महा-राज्ञी ही एका स्वामिनी हैं।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! भण्डासुर के वध के उद्योग में लगी हुई शक्तियों की अपार सेना से समन्वित आपका जो ध्यान करता है, उसके सभी शत्रु एक मण्डल मात्र में नष्ट होंवे। (४९ दिनों का एक मण्डल होता है)।

***

(६६) श्रीसम्पत्-करी-समारूढ़-सिन्धुर-व्रज-सेविता

सम्पत्ति देनेवाली। यह **पराम्बा** के एक विशिष्ट रूप का नाम है। '**स्वतन्त्र तन्त्र**' में कहा है कि '**सम्पत् - करीति काऽप्यास्ति विद्या**'–अर्थात् सम्पत् करनेवाली कोई एक विद्या है। '**ललितोपाख्यान**' में गजों पर अधिकार करने की कथा प्रसिद्ध है। इस नाम का शब्दार्थ है **सम्पत्-करी देवता**, जो हाथी पर सवार-हाथी के झुण्ड से घिरी है।

इसका आध्यात्मिक तात्पर्य है–**सुख-सम्पत्ति-मयी चित्त-वृत्ति** में अवस्थिता (आरूढ़), विषयी-भूत '**सिन्धुर**' (गज) के '**व्रज**' (समूह)-रूपी शब्दादि विषय-समूह से सेविता। यह **चित्त-वृत्ति की त्रिपुटी** अर्थात् **प्रमातृ-प्रमाण-प्रमेय** के विवेचनात्मक सम्बन्ध का ज्ञान है। यह ज्ञान ही यथार्थ सम्पत्ति है, न कि तुच्छ क्षण-भंगुर सांसारिक तथा-कथित सम्पत्ति। '**शिव-सूत्र**' की व्याख्या में इस सम्पत्ति को **समाधि-सुख** बताया है–'**लोकानन्दः समाधि-सुखम्।**'

◆◆प्रार्थना◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! मदवान गजेन्द्रों, सम्पत्करी देव-शक्तियों से सेवित, जो आपको प्रणाम करता है अथवा आपका ध्यान कर सहस्त्र-नामावली में नमः लगाकर जपादि करता है, वह सभी प्रकार की सम्पत्तियों से पूर्ण होवे।

***

(६७) श्रीअश्वारूढ़ाऽधिष्ठिताऽश्व-कोटिभिरावृता

'**अश्वारूढ़ा**' (घोड़े पर बैठी) **षोडश महा-विद्याओं** में एक महा-विद्या है। '**शक्ति-सङ्गम तन्त्र**' में उल्लेख है–

दश-पूर्वाश्च संहृद्य, जय-दुर्गा च शूलिनी।
अश्वारूढा महा-विद्या, त्रैलोक्य-विजयाऽभिधा।।

इस नाम के रहस्यार्थ का पता '**अश् व्यापने=क्वन् उणादि**' शब्द-साधन से मिलता है। अर्थ है–**व्यापकत्व-शक्ति** से युक्ता।

'**कादि-मत**' में '**अश्व**' का अर्थ **इन्द्रिय** है–'**इन्द्रियाणि स्वरूपिणी, तत्र पश्चिमतो यजेत्।**'

अतः '**अश्वारूढ़ा**' का दूसरा आध्यात्मिक अर्थ '**मन**' है। **मन**-रूपी सवार की वाहन इन्द्रियाँ हैं क्योंकि इन्हीं के द्वारा **मन** चलता है। इसी से सूर्य के '**सप्ताश्व**' नाम का तात्पर्य है-**सप्त-किरणें**। सारांश यह है कि **मन**-रूपिणी **भगवती-इन्द्रिय**-रूपी अश्वों पर स्थित असंख्य **इन्द्रिय-सुखों** का उपभोग करनेवाली है। '**श्रुति**' (छान्दोग्योपनिषत्) भी कहती है–'**मनो ह्यात्मा, मनो हि लोको, मनो हि ब्रह्म, मन उपास्येति।**'

◆◆प्रार्थना◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! संग्राम में अश्वारूढ़ा सैनिकाओं से घिरी हुई आपका जो ध्यान कर आराधना करते हैं, उन्हें प्रशंसनीय सम्पदा की प्राप्ति हो।

***

(६८) श्रीचक्र-राज-रथारूढ़-सर्वायुध-परिष्कृता

'चक्र-राज'-रूपी रथ पर बैठी सब प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों से अलंकृता। 'चक्र' से अनेक पदार्थों का बोध होता है। 'चक्र'-मण्डल को भी कहते हैं। 'ललितोपाख्यान' में 'चक्र-राज' और 'किरि-चक्र', जिसका उल्लेख ७०वें नाम में है तथा 'गेय-चक्र' का वर्णन है। इन तीनों चक्रों से सोम-मण्डल, सूर्य-मण्डल और वह्नि-मण्डल का भी तात्पर्य है–

'त्रिखण्डं मातृका-यन्त्रं (मन्त्रं), सोम-सूर्यानलात्मकम्।'

नव-चक्रात्मक श्री-चक्र में ये तीनों प्रधान चक्र हैं। इन तीनों (चक्र-राज, गेय और किरि-चक्र) का नित्य या अविना-भाव-सम्बन्ध है क्योंकि जहाँ 'चक्र-राज' है, वहाँ 'गेय-चक्र' है और जहाँ 'गेय-चक्र' है, वहीं 'किरि-चक्र' है–'चक्र-राज-रथोत्तमः।'

इन तीनों की त्रि-पुटी को 'ज्ञातृ-ज्ञान-ज्ञेय' की शुद्ध त्रि-पुटी कह सकते हैं। 'सर्वायुध' का सूक्ष्म अर्थ है–सब प्रकार के 'आत्म-ज्ञान' का साधन। अतएव 'चक्र-राज' से त्रि-पुटी के ज्ञान का तात्पर्य है। इसी से कहा गया है कि श्री-चक्र का पूजन ज्ञान, ज्ञातृ और ज्ञेय में अभेद-भावना ही है। यह पराम्बा के वासना-रूप का द्योतक है।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! संग्राम-स्थल में चक्र-राज-रथ अर्थात् श्री-यन्त्र की आकृति-वाले विजय रथ पर आरूढ़ सभी प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित आपका जो चिन्तन करते हैं, उनकी सर्वत्र विजय हो।

***

(६९) श्रीगेय-चक्र-रथारूढ़-मन्त्रिणी-परिसेविता

'गेय' अर्थात् 'गीति-चक्र' पर बैठी 'मन्त्रिणी' श्यामला देवी से सब प्रकार से सेविता है। इस 'गीति-चक्र' से गायत्री-मण्डल या सूर्य-मण्डल का बोध होता है। 'मन्त्रिणी' से विद्या की उपासिका योगिनी का तात्पर्य है।

अथवा जिस प्रकार पूर्व-पद से भगवती के वासना-रूप वा पर-रूप से तात्पर्य है, उसी प्रकार इस पद से भगवती के शब्द-रूप वा सूक्ष्म शरीर का तात्पर्य है। यह भगवान् श्रीक्षेम-राज के सूत्र 'विद्या-शरीर-स्फुरत्ता-मन्त्र-रहस्य' की व्याख्या से स्पष्ट है।

संक्षेप में 'चक्र-राजारूढ़ा' से पर-देवता-स्वरूप का बोध होता है और 'गेय-चक्रारूढ़ा' से बुद्धि-तत्त्वात्मिका मन्त्रिणी वा श्यामला का बोध होता है।

◆◆प्रार्थना◆◆

गेय-चक्रवाले रथ पर आरूढ़ मन्त्रिणी से समन्वित माता श्रीललिताम्बा कामेश्वरी मेरे मन्त्रों के सभी प्रकार के दूषणों का हरण करें।

***

(७०) श्रीकिरि-चक्र-रथारूढ़-दण्ड-नाथ-पुरस्कृता

'**किरि-चक्र**' में सवार '**दण्ड-नाथ**' से सेविता हैं। '**किरि**'-शब्द के अनेक तात्पर्य हैं। '**अमर-कोष**' के अनुसार '**किरि**' का अर्थ है–'**वराह**'। इस प्रकार तदाकृति वा तदाकृष्ट रथ पर सवार '**वाराही**' नाम की देवी से सेविता हैं।

'**वाराही**' से उस विद्या का तात्पर्य है, जो संसार के **जन्म-मरण-जनित दुःख** से उबार लेती हैं (**आनन्द-लहरी**, ३)–

जलधौ निमग्नानां दंष्ट्रा मुर-रिपु-वराहस्य भवती।

'**भावनोपनिषत्**' के अनुसार '**वाराही**' से पितृ-रूप आस्थ आदि **अवयवात्मक आत्मा** के रूप का बोध होता है।

अथवा '**किरि-चक्र**'–किरण-चक्र अर्थात् **सृष्टि-चक्र** को कहते हैं–'**किरिः किरणः सृष्टिः**'। इस प्रकार **भगवती** सृष्टि-रूपी रथ पर सवार '**दण्ड-नाथ**' अर्थात् **यम-राज** से सेविता हैं (प्रपञ्च-स्थिति के हेतु)।

संक्षेप में इसका आध्यात्मिक तात्पर्य यह है कि '**महा-वाराही**' वा '**दण्ड-नाथा**'–**श्रीललिताम्बा** की **अहङ्कार-तत्त्व-रूपिणी** हैं। ये **पराम्बा** के स्थूल रूप के द्योतक हैं।

◆◆प्रार्थना◆◆

किरि-चक्र नामक रथ पर आरोहित दण्ड-नाथा नायिका वाराही शक्ति, जिसके आगे चलती हैं वे देवी श्रीललिताम्बा मेरे विघ्नों और पातकों को दूर करें।

***

(७१) श्रीज्वाला-मालिनिका-क्षिप्त-वह्नि-प्राकार-मध्यगा

ज्वाला की माला से उत्पन्न अग्नि की लपटों (स्फुलिङ्ग) के बीच में है। इसका समन्वय **भगवती** के आदि-रूप '**दक्षिणा काली**' के प्रकटित चिता में प्रविष्टा रहने से है।

'**मध्यगा**' से तद्-द्रष्टत्व और तत्-सृष्टत्व–इन दोनों के मध्य वर्तिनी होने का तात्पर्य है अर्थात् सृष्टि करनेवाली होने पर भी स्वयं **सृष्टि के विकारों** से रहिता वा **अविकारिणी** हैं। '**सप्तशती**' भी ऐसा कहती है–

हेतुः समस्त - जगतां त्रि - गुणाऽपि दोषैर्न ज्ञायसे हरि - हरादिभिरप्यपारा।
सर्वाश्रयाऽखिलमिदं जगदंश - भूतमव्याकृता हि परमा प्रकृतिस्त्वमाद्या।।

भगवती अव्याकृता हैं, यह भी एक तात्पर्य है।

अथवा इस ज्वाला से उत्पन्न **वह्नि-प्राकार** के मध्यस्था से **परं-ज्योति-मध्यस्था** '**पर-ब्रह्म-रूपिणी**' का बोध होता है। इसी से **भगवती** को '**प्रकाश-शक्ति**' कहते हैं। '**ब्रह्म-सूत्र**'–'**ज्योति-दर्शनात्**' से यही बोध होता है। '**योग-वाशिष्ठ**' (उत्पत्ति-प्रकरण, १०।४६) भी कहता है–

चित्-प्रकाशस्य यन्मध्यं, प्रकाशस्यापि स्वस्य वा।
दर्शनस्य च यन्मध्यं, तद् रूपं ब्रह्मणो विदुः।

चिन्मय स्व-प्रकाश का मध्य अर्थात् स्थिति-काल और उसके साक्षात्कार का स्थिति-काल ही ब्रह्म का रूप है। इससे ज्योतिर्मय का ही बोध होता है।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! ज्वाला-मालिनी नामक देवता से अधिकृत वह्नि-प्राकार के बीच में आपका जो स्मरण करता है, उसके सभी विघ्न दूर होवें।

***

(७२) श्रीभण्ड-सैन्य-वधोद्युक्त-शक्ति-विक्रम-हर्षिता

भण्डासुर की 'चतुरङ्गिणी सेना' के वध को तैयार अपने नकुलि आदि 'शक्ति-समूह' के पराक्रम से आनन्दिता। तात्पर्य यह है कि 'भण्ड' जीव है, कारण यह अपने से ही परिहास करता है, 'शिव' होकर भी अपने को 'जीव' समझता है। 'भण्ड' का एक अर्थ है–परिहास करनेवाला, इसी से 'भण्ड' को भाँड़ कहते हैं। भाँड़ तमाशे के हेतु रूप भी बदलता है। शिव जीव का स्वाँग भरकर विश्व के रङ्ग-मञ्च पर विश्वेश्वरी (प्रपञ्चेश्वरी) को रिझाने के लिए विश्व-नाट्य करता है।

इस जीव-रूपी 'भण्ड' के भावानुकूल द्वैत-विषयक वृत्ति-रूपी सैन्य के वध अर्थात् दूर करने को प्रस्तुत, अद्वैत-भावात्मक वृत्ति-रूपी शक्तियों के विशेष क्रमों (विशेषेण क्रमः विक्रमः) अर्थात् 'पाद-विक्षेप' से आनन्दिता है। यह आनन्द अपने आनन्दांश में 'नवावरणों' के हट जाने से होता है। इन शक्तियों के नाम खेचरी, गोचरी, दिक्-चरी, भू-चरी आदि हैं। 'शक्ति-सूत्र'–'तदपरिज्ञाने स्व-शक्ति-व्यामोहिता संसारित्वम्' के मनन से ऐसा ही बोध होता है।

◆◆प्रार्थना◆◆

भण्डासुर की सम्पूर्ण सेना का वध करने का उद्योग करती हुई शक्तियों के पराक्रम को देखकर हर्षित होनेवाली भगवती श्रीललिताम्बा, साध्य-सिद्धि के लिए मेरे मन के विक्रम को क्रमशः बढ़ाती रहें।

***

(७३) श्रीनित्या-पराक्रमाटोप-निरीक्षण-समुत्सुका

१. कामेश्वरी, २. भग-मालिनी, ३. नित्य-क्लिन्ना, ४. भेरुण्डा, ५. वह्नि-वासिनी, ६. वज्रेश्वरी, ७. शिव-दूती, ८. त्वरिता, ९. कुल-सुन्दरी, १०. नित्या, ११. नील-पताकिनी, १२. विजया, १३. सर्व-मङ्गला, १४. ज्वाला-मालिनी और १५. चित्रा–इन पन्द्रहों नित्या-शक्तियों के पराक्रम के विस्तार (भण्डासुर के दमनकादि चन्द्र-गुप्तान्त पन्द्रहों सेना-नायकों के वध) को देखने के लिए सम्यक् रूप से उत्सुका।

उक्त पन्द्रह नित्याएँ–पन्द्रह तिथियों की परिचायक हैं। इसी प्रकार प्रथमा विद्या की पन्द्रहों नित्याएँ (काली, कपालिनी आदि)–'पन्द्रह तिथियों' की द्योतक हैं। भेद इतना ही है कि जहाँ प्रथमा विद्या (काली) की नित्याएँ 'कृष्ण-पक्ष' की तिथियों की द्योतक हैं, वहाँ इस पञ्च-दशी भगवती की नित्याएँ 'शुक्ल-पक्ष' की तिथियों की द्योतक हैं।

इस भेद का अन्तस्तात्पर्य यह है कि **प्रथमा** की नित्याओं का अवसान **अमावास्या** (अमा-कला) वा '**पूर्ण निर्वाण**' में होता है, जब कि **तृतीया महा-विद्या** की नित्याओं का अवसान **पूर्णिमा** (पूर्ण-कला) वा '**पूर्ण विकास**' में होता है। पूर्व-पक्ष में कलावलोकन '**संहार-क्रम**' से है और पर-पक्ष में '**सृष्टि-क्रम**' से।

तिथियों से ही काल के परिणाम का अवलोकन होता है (**श्रुति**)–

पञ्च-दश-तिथि-रूपेण कालस्य परिणामावलोकनम्।

नित्याएँ–अनादि-सिद्धा हैं। ये उत्तरोत्तर वृद्धि करती हुई पूर्ण होती हैं। इन्हें '**ज्ञान-कला**' कहते हैं। '**योग-वाशिष्ठ**' में उल्लेख है–

सर्वा एव कला जन्तोरनभ्यासेन नश्यति।
इयं ज्ञान-कला त्वन्तः, सकृज्जाताऽपि वर्धते।।

अर्थात् जीव की सब कलाएँ अनभ्यास अर्थात् मनन की आवृत्ति रुक जाने से नष्ट होती हैं। परन्तु यह '**ज्ञान-कला**' एक बार उत्पन्न होने पर बढ़ती ही है, घटती नहीं।

◆◆प्रार्थना◆◆

संग्राम-क्षेत्र में नित्या देवियों के पराक्रम को देखने के लिए सदा उत्सुक रहनेवाली भगवती श्रीललिताम्बा, संसार के आडम्बरों से व्यथित हम भक्त-जनों को सदा कृपा-पूर्ण दृष्टि से देखें।

***

(७४) श्रीभण्ड-पुत्र-वधोद्युक्त-बाला-विक्रम-नन्दिता

भण्डासुर के पुत्रों के वध में प्रस्तुता **बाला** (**विद्या**) के पराक्रम से हृष्टा। **भण्ड** के तीस पुत्र **चतुर्बाहु** आदि थे। ये '**आत्म-तत्त्व**' के चौबीस और '**विद्या-तत्त्व**' के छः (पुरुष-तत्त्व को छोड़कर) तत्त्वों के द्योतक हैं। ये जड़ और मिश्र चैतन्य-जड़ (शुद्धाशुद्ध) तत्त्व हैं, जिनका नाश **पराम्बा** अपने ही **नव-वर्षा कुमारी** (**कन्या**) के रूप से करती हैं अर्थात् '**बाला-विद्या**' से ये अविद्याएँ दूर होती हैं।

'**भास्कर राय**' ने इन **भण्ड-पुत्रों** को '**आणव**' आदि **तीस मलों** का द्योतक कहा है, परन्तु मल-प्रधान-तया तीन प्रकार के हैं–१. **आणव्य**, २. **कार्मण** और ३. **मायिक** (माया-मूल)। हो सकता है, ये इन्हीं तीनों के तीस भेद या प्रभेद हों।

'**बाला-विक्रम**' का तात्पर्य है–**बाला** के विशिष्ट क्रम अर्थात् विशेष उपासना-क्रम से, जो गुरु-मुख से ही अवगम्य है।

◆◆प्रार्थना◆◆

भण्डासुर के पुत्रों के वध करने हेतु उद्युक्त भगवती श्रीबाला-त्रिपुर-सुन्दरी के पराक्रम से आनन्दित होनेवाली भगवती श्रीललिताम्बा की कृपा से हमें ऊर्जस्वी वैचारिक परम्परा-रूपी सन्तति की प्राप्ति होवे।

***

(७५) श्रीमन्त्रिण्यम्बा-विरचित-विशुक्र-वध-तोषिता

'मन्त्रिणी माता' श्यामला द्वारा विशुक्र दैत्य के मारे जाने पर तुष्टा, जैसा कि 'ललितोपाख्यान' में है। 'बाला' से भगवती के 'वासनात्मक' रूप का बोध होता है, तो 'मन्त्रिणी' से भगवती के 'मन्त्र' वा सूक्ष्म रूप का।

'विशुक्र'-भण्डासुर का पुत्र था, जिसे भण्डासुर ने अपने दक्षांश से उत्पन्न किया था। (ब्रह्माण्ड-पुराण)-

पुरा भण्डासुरो नाम, सर्व-दैत्य-शिखा-मणिः।
पूर्व-देवान् बहु-विधान्, यः स्रष्टुं स्वेच्छया पटुः।
विशुक्रं नाम दैतेय - वर्ग - संरक्षण - क्षमम्।
शुक्र - तुल्य - विचारज्ञं, दक्षांशेन ससर्ज सः।
वामांशेन विषङ्गं च, सृष्टिवान् भ्रातरावुभा।

अर्थात् पूर्व-काल में भण्डासुर समस्त दैत्यों का मुखिया था, जो अपनी इच्छा मात्र से बहुत प्रकार के देवताओं को पहले सृजन करने में समर्थ था। उसने राक्षस-समुदाय की रक्षा करने में समर्थ और शुक्र ऋषि के समान विचार (बुद्धि) रखनेवाले 'विशुक्र' को अपने दाहिने भाग से और उसके भाई 'विषङ्ग' को वामांश से सृजन किया।

'विशुक्र'-पद के दो अर्थ हैं-'विरुद्धं' विपरीतं, विपरीत-मार्ग-गामी। 'शुक्रं' तेजो यस्य सः।

अर्थात् विषय-प्रापञ्चिक या अनात्माकार-वृत्ति-वर्द्धक तेजवाला। इसी भावार्थ की समर्थक दूसरी व्युत्पत्ति भी है-'विशेषेण शुचं शोकं रति ददाति इति यः सः।'

अर्थात् विशेष रूप से या बहुत मात्रा में दुःख देनेवाला। अनात्माकार-वृत्ति ही जीव को दुःख-सागर में निमग्न रखती है। इस प्रकार दोनों ही अर्थ समन्वित हैं।

संक्षेप में जिस प्रकार 'भौतिक' आधि-पराम्बा के स्थूल-ज्ञान से नष्ट होती है और 'आत्मिक' आधि-भगवती के वास्तविक ज्ञान से, उसी प्रकार हमारी 'दैविक' आधि-भगवती के सूक्ष्म अर्थात् मान्त्रिक रूप के ज्ञान से नष्ट या दूर होती है।

◆◆प्रार्थना◆◆

मन्त्रिणी श्यामलाम्बा द्वारा भण्डासुर के पुत्र विशुक्र के वध से सन्तोष पानेवाली श्रीललिताम्बा जी, मेरे शत्रुओं का नाश कर मेरे मन को सन्तुष्ट करें।

***

(७६) श्रीविषङ्ग-प्राण-हरण-वाराही-वीर्य-नन्दिता

विषङ्ग दैत्य के नाश करने में वाराही देवी के शौर्य से हर्षिता। पहले बता चुके हैं कि 'विषङ्ग'-भण्डासुर के वाम-भाग से उत्पन्न हुआ था। 'विषङ्ग'-पद के भी दो तात्पर्य हैं-

(१) 'विरुद्धः संज्ञो विषङ्गः' अर्थात् विरीतं-गामी बुद्धिवाला, (२) 'विषं गच्छति इति विषङ्गः' अर्थात् विषात्मक या आत्मा के हेतु विष-स्वरूप।

'विषङ्ग' की उत्पत्ति वामांश अर्थात् शरीर के पापांश से होती है। अतः इसे 'पाप-पुरुष' भी कह सकते हैं। 'भूत-शुद्धि' की प्रक्रिया में 'वाराही' अर्थात् उन्मूलन करनेवाली अथवा 'कुण्डली-शक्ति' को नीचे से ऊपर को उठानेवाली (जैसे पृथ्वी को वराह भगवान् ने दाँतों पर ऊपर उठाया था) शक्ति द्वारा यही 'पाप-पुरुष' दग्ध किया जाता है।

'त्रिपुरा-सिद्धान्त' में लिखा है कि वराहानन्दनाथ की उपासिता होने से इस भगवती का नाम 'वाराही' पड़ा।

◆◆प्रार्थना◆◆

भण्डासुर के पुत्र विषङ्ग के प्राणों को हरण करनेवाली दण्डिनी देवी वाराही के पराक्रम से आनन्दित होनेवाली श्रीललिता जी, हमारे शत्रुओं का नाश कर हमें आनन्द प्रदान करें।

***

(७७) श्रीकामेश्वर-मुखालोक-कल्पित-श्रीगणेश्वरा

कामेश्वर के मुँह को देखने से गणेश को उत्पन्न करने या करनेवाली। 'ब्रह्माण्ड-पुराण' में लिखा है कि 'ललिता देवी ने कामेश्वर के मुख की ओर मुस्कान-युक्त दृष्टि डाली। मन्द-मन्द मुस्काती हुई उनके मुख से हाथी के आकारवाले, कनपटी से चूते हुए मदवाले एक देव प्रकट हुए।'

शिव-शक्ति मिश्र सिद्धान्त के अनुसार तात्पर्य यह है कि कामेश्वर-मुख-दर्शन अर्थात् पर-शिव-वदन-चन्द्र अर्थात् साकूत-वीक्षण से तथा शुद्ध शक्ति-वाद के अनुसार कामेश्वर-रूप विमर्श-शक्ति के मुखावलोकन अर्थात् बुद्धि-योग से श्रीमान् अर्थात् परम विभूति-युक्त गणेश्वर अर्थात् अविद्या-रूप विघ्नों को दूर करनेवाली एक महती दैवी शक्ति को उत्पन्न करनेवाली स्वात्म-देवता।

'गणेश्वर' अर्थात् आठों पुरियों का स्वामी। यह पुर्यष्टक प्रमातृत्व अहन्ताऽभिमान-विशिष्ट जीव अपने आत्मा के स्वरूप अर्थात् यथार्थ-रूप-निष्कर्ष ज्ञान-जन्य आठों पुरियों के नायकत्व के ज्ञान का 'अहं ब्रह्मास्मि' (मैं ब्रह्म हूँ) द्योतक है।

संक्षेप में पराम्बा की मुस्कान-रूपी कृपा-कटाक्ष से कामेश्वर-रूप शुद्ध विमर्श से 'अहं ब्रह्मास्मि' भाव उत्पन्न होता है। यही गीतोक्त बुद्धि-योग है, जो 'उसकी' कृपा से ही लभ्य है, जिससे जीव परम पद (ब्रह्मत्व) पाता है (गीता,१०/१०)–

ददामि बुद्धि-योगं तं, तेन मामुपयान्ति ते।

अथवा मिश्र शक्ति-शिव सिद्धान्त के अनुसार भगवती विमर्श-शक्ति जब विकसित होती है, तब कामेश्वर-रूपी शिव के मुखावलोकन (प्रत्यक्षानुभव) से 'ब्रह्म-भाव' उत्पन्न होता है।

◆◆प्रार्थना◆◆

श्री कामेश्वर पर-शिव के मुख-मण्डल के प्रभा-पुञ्ज से देवी-पुत्र भगवान् गणेश को प्रकट करनेवाली, समस्त भुवनों की ईश्वरी भगवती श्रीललिताम्बा की कृपा से हमारा ऐश्वर्य बढ़े और सदा हमारा कल्याण होवे।

***

(७८) श्रीमहा-गणेश-निर्भिन्न-विघ्न-यन्त्र-प्रहर्षिता

महा-गणेश के द्वारा **विघ्न-यन्त्र** के नाश पर आनन्दिता। '**ललितोपाख्यान**' के अनुसार यह '**विघ्न-यन्त्र**'–**विशुक्र** द्वारा **भगवती की सेना** के मध्य में फेंका गया था। '**भास्कर राय**' ने इस यन्त्र का नाम '**जय-विघ्न**' बताया है, इससे **अविद्या** की '**आवरण-शक्ति**' का बोध होता है। इसे **आवरण-जाल** भी कह सकते हैं। इसका नाश केवल **यथार्थ-ज्ञान** के द्योतक **महा-गणेश** द्वारा ही होता है, जिससे **स्वात्म-देवता** प्रकृष्ट रूप से आनन्दिता होती हैं।

◆◆प्रार्थना◆◆

भण्डासुर द्वारा रखे विघ्न-यन्त्र को क्षण-मात्र में छिन्न-भिन्न करनेवाले महा-गणपति के पराक्रम से हर्षित होनेवाली भगवती श्रीललिताम्बा, हमारे सभी विघ्नों को शीघ्र-से-शीघ्र दूर करें।

***

(७९) श्रीभण्डासुरेन्द्र-निर्मुक्त-शस्त्र-प्रत्यस्त्र-वर्षिणी

असुरों के राजा **भण्ड** के शस्त्रों को बेकार करनेवाले अस्त्रों को बरसानेवाली। इसका आध्यात्मिक तात्पर्य है–**अविद्यात्मक वृत्तियों** पर **पराहन्ताऽनुसन्धान-धारा**-रूपी अस्त्रों को बरसानेवाली **महा-विद्या**।

◆◆प्रार्थना◆◆

भण्डासुर के अस्त्रों को नष्ट करने हेतु प्रत्यस्त्रों की वर्षा करनेवाली श्रीललिताम्बा जी, प्रतिवाद में मुझे सदा विजयी बनावें।

***

(८०) श्रीकरांगुलि-नखोत्पन्न-नारायण-दशाकृतिः

जिसके हाथ की अँगुलियों के नखों से **नारायण (विष्णु)** के **मत्स्य आदि दशों अवतार** हुए हैं। ये अवतार **भण्डासुर** के '**सर्वासुरास्त्र**' नामक अस्त्र से समय-समय पर उत्पन्न **सोमक, रावण, बलि, हिरण्याक्ष** आदि दश असुर राजाओं को मारने के निमित्त उत्पन्न हुए हैं।

'**करांगुलि**' से **क्रिया-शक्ति** का तात्पर्य है क्योंकि कर (हाथ) ही **कर्मेन्द्रियों** में प्रधान है। '**नखोत्पन्न**' से तात्पर्य है–नख-मात्र से अर्थात् अनायास (स्वतः) पैदा हुए। '**नारायण**' का यहाँ अर्थ है–**शक्तिमान्**। इसकी दश आकृति या स्वरूप। अथवा '**दशा+कृतिः**' से अवस्था-दशक से तात्पर्य है। ये **दस अवस्थाएँ** हैं–जीव की जाग्रत् आदि ५ अवस्थाएँ +ब्रह्म की ५ अवस्थाएँ अर्थात् **भगवती की क्रिया-शक्ति** से व्यष्टि और समष्टि की पाँच-पाँच दशाएँ या अवस्थाएँ अनायास उत्पन्न हुई हैं।

अथवा **अविद्या**-ग्रस्त जीव के द्योतक **भण्ड** की **दशों इन्द्रियों के विकार** को दूर करनेवाली **दश शक्तियों** को अनायास पैदा करनेवाली **मूल महा-शक्ति**।

◆◆प्रार्थना◆◆

भण्डासुर द्वारा माया से शङ्खासुर, हिरण्याक्ष, हिरण्यकशिपु, रावण, कन्सादि दानवों को सदल प्रगट करने पर, अपने हाथों की अँगुलियों के नखों अर्थात् अँगूठे और अँगुली की चुटकी की फटकार से नारायण के दशों अवतार–मत्स्य, कूर्म, वराह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण आदि प्रगट कर मायिक राक्षसों का वध करनेवाली माता श्रीललिताम्बा, मेरे मन में सदा विलास करें।

***

(८१) श्रीमहा-पाशुपतास्त्राग्नि-निर्दग्धासुर-सैनिका

महान् '**पाशुपतास्त्र**' के तेज से **आसुरी सेना** को निःशेष दग्ध करनेवाली। '**महा-पाशुपतास्त्र**' से **षडक्षर पाशुपतास्त्र** से भिन्न अर्थात् सर्व-श्रेष्ठ **पाशुपतास्त्र** से तात्पर्य है। '**पशु-पति**' का अर्थ है–पशुओं का स्वामी। इससे **सदा-शिव** का बोध होता है क्योंकि रुद्रों से लेकर पिशाच-पर्यन्त पशु हैं। इनके स्वामी होने के कारण **सदा-शिव**–'**पशु-पति**' कहलाते हैं–

रुद्रादयः पिशाचान्ताः, पशवः परिकीर्तिताः।
तेषां पतित्वात् सर्वेशो, भवः पशु-पतिर्भवेत्।।

श्रुति (शरभोपनिषत्) भी कहती है–

सर्वे देवाः पशुतामवापुः, स्वयं तस्मात् पशु-पतिर्बभूव।

इसका सूक्ष्म रूप मन्त्रात्मक है, जो मन्त्र-शास्त्र में दिया है। वासनात्मक रूप यह है कि **सदा-शिव-आकाश-तत्त्व के अधिष्ठातृ देवता** हैं। **आकाश-तत्त्व** में सब तत्त्वों का लय होता है। इसमें तत्त्वों का लय होने पर आसुरी सेना-द्योतक **आसुरी सर्गों** का लय होता है और **शुद्ध सत्त्व-गुण** मात्र रह जाता है।

◆◆प्रार्थना◆◆

महान् पाशुपत अस्त्र-जन्य अग्नि से असुर सैनिकों को निरन्तर दग्ध करनेवाली श्रीकामेशी ललिताम्बा, मेरे शत्रुओं को अपने कोप से दग्ध कर देवें।

***

(८२) श्रीकामेश्वरास्त्र-निर्दग्ध-सभण्डासुर-शून्यका

'**कामेश्वरास्त्र**' नामक अस्त्र से **भण्डासुर**-सहित उसकी पुरी को निःशेष जलानेवाली। '**कामेश्वरास्त्र**' का सूक्ष्म अर्थ है–**कामेश्वर-मन्त्र**। पर-अर्थ है–वासनात्मक रूप। इससे निरुपाधिक '**कामेश्वरास्त्र**' का सूक्ष्म अर्थ है–**कामेश्वर-मन्त्र**। इससे निरुपाधिक **विमर्श-शक्ति** से तात्पर्य है। इसके ज्ञान से जीव **पञ्च-शून्यक**-सहित अर्थात् **पञ्च-कोश** (१. अन्न-मय, २. प्राण-मय, ३.मनो-मय, ४. विज्ञान-मय और ५. आनन्द-मय) का दहन होकर **तुरीयातीतावस्था** को प्राप्त होता है। अथवा **विज्ञान-मय-कोशान्त** शरीर को जलाकर आनन्द-मय बना देनेवाला '**कामेश्वरास्त्र**' है।

◆◆प्रार्थना◆◆

कामेश्वर पर-शिव द्वारा प्राप्त अस्त्रों से भण्डासुर-सहित उसकी नगरी शून्यका को जला डालनेवाली भगवती उमा श्रीललिता, ज्ञान-रूपी अस्त्रों से मेरे अरि षड्-वर्ग काम, क्रोधादि का दहन करें।

***

(८३) श्रीब्रह्मोपेन्द्र-महेन्द्रादि-स्तुयमानाऽऽत्म-वैभवा

ब्रह्मा, विष्णु और इन्द्र आदि महा-देवताओं से अपने पराक्रम की स्तुति की जानेवाली आत्म-देवता। भण्डासुर के मारे जाने पर ब्रह्मा आदि द्वारा स्तुति की पौराणिक कथा है। इसका रहस्यार्थ यह है कि ब्रह्मादि देव-सर्गापन्न ज्ञानियों का परिचित आत्मा-रूप देवता अर्थात् परमा-शक्ति का अपरिच्छिन्न विभुत्व अर्थात् सर्वात्मत्व-स्वरूप है।

◆◆प्रार्थना◆◆

ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि देव-गणों से भूरि-भूरि प्रशंसा प्राप्त ऐश्वर्य, विक्रम, प्रभुत्व, वैभववाली देवी त्रिपुर-सुन्दरी श्रीललिता महा-राज्ञी, मुझे वैभव देवें।

***

(८४) श्रीहर-नेत्राग्नि-सन्दग्ध-काम-सञ्जीवनौषधिः

शिव की आँख की अग्नि-ज्वाला से जले मदन को पुनः सम्यक् प्रकार से जिलानेवाली औषधि। यहाँ 'बाप से दुतकारा बेटा माँ से ही पुचकारा जाता है' कहावत चरितार्थ है–'**हरौ रुष्टे गुरुस्त्राता, गुरौ रुष्टे न कश्चन**' अर्थात् शिव के क्रुद्ध होने पर गुरु रक्षा करता है, परन्तु गुरु के क्रुद्ध होने पर कोई रक्षा नहीं करता। इस प्रकार भगवती आदि-गुरु हैं, ऐसा बोध होता है। '**योगिनी-हृदय**' में भी शिवोक्ति है–

अन्यायेन न दातव्यं, नास्तिकानां महेश्वरि!।
एवं त्वयाऽहमाज्ञप्तो, मदिच्छा-रूपया प्रभो!।।

अर्थात् हे महेश्वरि! नास्तिकों को अन्याय से नहीं देना चाहिए। इस प्रकार हे प्रभो भगवति! मेरी इच्छा-रूप तुमसे मैंने आज्ञा पाई है।

इससे **भगवती शिव की भी प्रवर्तिका** हैं, ऐसा बोध होता है। शिव से यहाँ प्रवृत्ति की प्रति-इच्छा के कारणत्व का बोध होता है।

अथवा '**हर**' से आत्म-स्वरूप के अपहारक का तात्पर्य है। इस भाव से इसके नेत्र की अग्नि से मूल अज्ञान की अधिकता से तात्पर्य है। ऐसे काम अर्थात् कामेश्वर-रूपी मोह-ग्रस्त जीवात्मा के सम्यक् प्रकार से आवरण (मोह) के परावृत्य भाव-पूर्वक जीवन में अपने स्वरूप की प्राप्ति की जो औषधि अर्थात् मूल कारण है।

संक्षेप में भाव यह है कि भगवती की उपासना से, जो अविद्या की नाश करनेवाली विद्या-रूपिणी है, अपने '**स्वरूप**' अर्थात् असली रूप की प्राप्ति होती है अर्थात् मोक्ष प्राप्त होता है।

◆◆प्रार्थना◆◆

महादेव के तृतीय नेत्र की अग्नि से भस्म काम-देव को कटाक्ष मात्र से सञ्जीवित करनेवाली भगवती शिवा ललिताम्बा, मुझ अविद्या से मोहित जीव को चेतना से युक्त कर जगावें।

***

(८५) श्रीश्रीमद्-वाग्भव-कूटैक-स्वरूप-मुख-पङ्कजा

महा-महिमा-मय **वाग्भव-कूट** मन्त्र-स्वरूप मुख-कमल है जिसका। **'पञ्च-दशी विद्या'** तीन कूटों की है। ये तीनों कूट क्रमशः सूक्ष्म, सूक्ष्म-तर और सूक्ष्म-तम प्रकार के हैं। इसी आधार पर **कुण्डली-शक्ति** भी तीन प्रकार की कही गई है (कालिका-पुराण)–

त्रिविधा कुण्डली-शक्तिस्त्रि-देवानां च सृष्टये।
सर्वं त्रयं त्रयं यस्मात्, तु तस्मात् त्रिपुरा मता।।

सबसे प्रथम **'वाग्भव-कूट'** है, जो पाँच वर्णों का है। यह ज्ञान-प्रदायकत्व आदि महिमा-मय होने से मुख्य है। **'मुख'** द्वयर्थक है। यह **'वाग्भव-कूट'** भगवती के **मान्त्रिक (सूक्ष्म) शरीर** के मुख (ऊर्ध्वांश) स्वरूप है, जैसा कि **तन्त्र-शास्त्र** में कहा गया है–

नेत्रोष्ठापर-गल - वर्णा शालि-वाचाम्।
सम्भूंतिर्मुखमिति वाग्भवाख्य - कूटम्।।

अर्थात् नेत्र और होठों से बने गले से उच्चारित वर्ण **'क-च-ट-त-प'** आदि वर्ग से युक्त वचनों की उत्पत्ति ही मुँह है, इसलिए **'वाग्भव-कूट'** है।

◆◆प्रार्थना◆◆

श्रीमद्-वाग्भव-कूट जैसे मुख-पङ्कजवाली श्रीत्रिपुरा ललिताम्बा देवी, अपनी कृपा-दृष्टि से मुझे वचन-सिद्धि का वरदान देने की कृपा करें।

***

(८६) श्रीकण्ठाधः-कटि-पर्यन्त-मध्य-कूट-स्वरूपिणी

कण्ठ से नीचे कमर तक द्वितीय कूट-स्वरूपा है। दूसरे कूट से **'काम-कूट'** का तात्पर्य है, जो छः वर्णों का है।

◆◆प्रार्थना◆◆

कण्ठ से कटि तक मध्य भाग में मध्य-कूट का स्वरूप धारण करनेवाली ईश्वरी श्रीललिताम्बा, मेरे मन के दुर्विकल्पों को दूर करें।

***

(८७) श्रीशक्ति-कूटैकताऽऽपन्न-कट्यधो-भाग-धारिणी

कमर से नीचे के भाग को **'शक्ति-कूट'** के रूप में धारण करनेवाली अर्थात् कमर के नीचे का भाग **'शक्ति-कूट'** का बना है। यह **'शक्ति-कूट'** चार वर्णों का बना **तीसरा कूट** है।

उक्त दोनों कूटों के सम्बन्ध में तन्त्र-शास्त्र कहता है कि 'कामेऽस्ति हृदि वसतीति काम-राजं, स्रष्ट्रत्वात् तदनु तवाम्ब! शक्ति-कूटम्।' इन कूटों के अनेक तात्पर्य हैं। विषद ज्ञान के लिए 'मुमुक्षु-मार्ग' द्रष्टव्य है।

◆◆प्रार्थना◆◆

कटि से चरण-पर्यन्त शक्ति-कूट का स्वरूप धारण करनेवाली श्रीललिता महा-राज्ञी, मेरे अवयवों को सुस्थिर और बलवान बनावें।

***

(८८) श्रीमूल-मन्त्रात्मिका

मूल-मन्त्र-स्वरूपा। मूल-मन्त्र के अनेक अर्थ हैं। एक अर्थ यह है कि पुरुषार्थ-चतुष्टय अर्थात् धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष का मूल कारण होने से मूल-मन्त्र कहलाता है। अथवा तीनों कूटों का मूल होने से त्र्यक्षरी मूल-मन्त्र का बोध होता है। श्रुति के अनुसार सब मन्त्रों का मूल, जो मूलाधार से उत्पन्न होता है और मूल-स्वरूप-लिङ्ग का कारण है (योग-शिखोपनिषत्)–

मूलत्वात् सर्व-मन्त्राणां, मूलाधार-समुद्भवात्।
मूल-स्वरूप-लिङ्गत्वान्मूल-मन्त्र इति स्मृतः।।

मन्त्र की भी अनेक परिभाषाएँ हैं। जिसके मनन से रक्षा हो, उसे मन्त्र कहते हैं–'मननात् त्रायते इति मन्त्रः'–यह सामान्य परिभाषा है। विशेष परिभाषा है–

पूर्णाहन्ताऽनुसन्ध्यात्मा, स्फूर्जन्मनन-धर्मतः।
संसार-क्षय-कृत् त्राण-धर्मतो मन्त्र उच्यते।।

अर्थात् जिसकी मनन-शक्ति से पूर्णाहन्ता-भाव का आत्मा से स्फुरण होता है; जिससे जीव-भाव या संसार के (जन्म-मरण) दुःख से रक्षा हो, उसे मन्त्र कहते हैं। 'श्रुति' (योग-शिखोपनिषद्) इसी तात्पर्य को इन शब्दों में व्यक्त करती है–

मननात् प्राणनाच्चैव, मद्-रूपस्यावबोधनात्।
मन्त्रमित्युच्यते ब्रह्मन्!, मदधिष्ठानतोऽपि वा।।

अर्थात् हे ब्रह्मन्! मनन से, चेतना लाने के कारण, मेरे (ब्रह्म) रूप के ज्ञान का कारण होने से और मेरी स्थिति-भूमि होने के कारण अर्थात् शब्द-ब्रह्मत्व होने से 'मन्त्र' कहा जाता है।

पूज्य आचार्य भास्कर राय ने काम-कला-अक्षर को ही मूल-मन्त्र कहा है–

वस्तुतस्तु मूल-मन्त्र-शब्दाभ्यां काम-कलाऽक्षरमुच्यते।

इस सिद्धान्त से 'मूल-मन्त्रात्मिका' का तात्पर्य 'काम-कला-स्वरूपा' है।

◆◆प्रार्थना◆◆

सन्तों और भक्तों के कर्मों को निर्मूल करनेवाली, उन्हें मन्त्र-स्वरूप मनन देनेवाली तथा मनन हेतु रक्षा करनेवाली मूल-मन्त्रात्मिका भगवती श्रीललिताम्बा, मुझे मनन करने हेतु सुरक्षित कीजिए।

***

(८९) श्रीमूल-कूट-त्रय-कलेवरा

आदि-कूट-त्रय-शरीरिणी अर्थात् जैसा पूर्व कहा जा चुका है, **तीनों कूटों** से इसका शरीर बना है। इससे बोध होता है कि **पराम्बा-त्र्यक्षरी-रूपी त्रि-ब्रह्म-रूपिणी** है। **श्रुति**-कथित **त्रि-ब्रह्म** का तात्पर्य है–१. **अरूप** (निराकार), २. **शब्द-रूप** और ३. **विश्व-रूप ब्रह्म**।

व्यष्टि-भाव में '**कूट-त्रय**' पद से आत्मा के स्थूल, सूक्ष्म और लिङ्ग–इन **तीनों शरीरों** का बोध होता है। अथवा इससे **पराम्बा** के कूटस्थ **कुण्डली**-स्वरूपा का भी तात्पर्य है। **कुण्डली** के तीनों रूपों में से प्रत्येक एक-एक कूट का रूप है।

◆◆प्रार्थना◆◆

मूल-मन्त्र के कूट-त्रय-रूप शरीरवाली भगवती श्रीललिताम्बा, मुझे सभी प्रकार की सम्पदाओं से युक्त करिए।

***

(९०) श्रीकुलामृतैक-रसिका

एक **कुलामृत** ही को चखनेवाली। केवल **कुलामृत** का पान करने से ही स्वात्म-देवता आनन्दित होती है। '**कुल**'-शब्द बड़ा रहस्य-मय है। इसके अनेक तात्पर्य हैं। '**कुल**' सजातीय समूह-वाचक है। इस प्रकार **एकता-ज्ञान-विषयत्व-रूप** है, जो सजात्यापन्न **ज्ञाता, ज्ञान** और **ज्ञेय**-त्रयात्मक है। इससे **त्रि-पुटी** के ऐक्य-ज्ञान का नाम '**कुलामृत**' है।

'**कुः पृथ्वी (पृथ्वी-तत्वं) लीयते यत्र तत् कुलम्**'–अर्थात् **पृथ्वी-तत्त्व** का जहाँ लय हो, वही **कुल** है। इसका लय होता है '**कुल-सहस्त्र-दल चक्र**' में। **सहस्त्रार** दो हैं–१. **अधो-मुख** अर्थात् शिर के ऊर्ध्व-भाग में और २. **ऊर्ध्व-मुख** अर्थात् **मूलाधार-चक्र** के नीचे।

पृथ्वी-तत्त्व का लय यद्यपि **जल-तत्त्व** में अथवा **वह्नि-तत्त्व** में होता है, तथापि पूर्ण लय अन्य तीनों तत्त्वों के सङ्ग **आकाश-तत्त्व** में होकर **मनस्तत्त्व** और **अहं-तत्त्व** के सङ्ग **सहस्त्रार** में ही होता है। इसी से प्रधान '**कुलागार**' वही है। अतएव **सहस्त्रार** से जो अमृत चूता है, उसी को '**कुलामृत**' कहते हैं।

पुनः रहस्य **तन्त्र-शास्त्र** को भी '**कुल**' कहते हैं क्योंकि इस शास्त्र का **अद्वैत-वाद**–खण्ड **उपास्य** और **उपासक की सजातीयता** का प्रतिपादन करता है। इसी आधार पर '**कल्प-सूत्र**' में लिखा है–'**कुल-पुस्तकानि च गोपयेत्।**' आगम इसका और भी व्यापक रूप में प्रयोग करता है–'**दर्शनानि तु सर्वाणि कुलमेव विशन्ति हि।**'

पुनः '**कुल**'–**शक्ति** है, '**अकुल**'–**शिव** है। इस प्रकार **शक्ति के अमृत** (शक्तेरमृतं) को '**कुलामृत**' कहते हैं। '**शक्तेरमृतं**' का तात्पर्य '**शक्त्या दत्तामृतं**'–शक्ति के दिए अमृत से है अर्थात् **शक्ति-जन्य अमृतत्त्व-भाव**। शक्ति की प्राप्ति से ही **अमृतत्त्व-भाव**–'**अहममरः**' की प्राप्ति होती है। यह **शक्ति-सञ्चय** चाहे **ज्ञान** से हो, चाहे **योग-क्रिया** के बल से हो, चाहे **भावना** मात्र से हो,

'कुलामृत' का पान करने से ही होता है। जो साधक योगी नहीं है, वह केवल भावना से ही सब प्रक्रियाओं का सम्पादन करता है। 'भास्कर राय' भी लिखते हैं–

अयोगिभिरपि भावना-मात्रेण सर्वाण्येषा प्रक्रिया सम्पाद्यते।

◆◆प्रार्थना◆◆

मूलाधार से उठाकर ऊपर सहस्त्रार तक पहुँचानेवाली, सहस्त्रार-कमल से झरित अमृत का पान करानेवाली भगवती शिवा ललिताम्बा, मुझे अमृत-पान कराकर चिरञ्जीवी बनावें।

***

(९१) श्रीकुल-सङ्केत-पालिनी

कुल (शास्त्र) के सङ्केतों अर्थात् रहस्यों की (अनधिकारी पशु-जनों से) रक्षा करनेवाली। यहाँ '**कुल**' से **कुलाचार** से तात्पर्य है। शास्त्रों की एक परिभाषा है–'**न कुलं कुलमित्याहुराचारः कुलमुच्यते।**' यह वस्तुतः **कुल-सङ्केत** की रक्षा नहीं है, वरन् अनधिकारियों की ही रक्षा करता है, जिनकी इन सङ्केतों के ज्ञान से अनिष्टापत्ति की सम्भावना है। **कुल-सङ्केतों** के कल्पोक्त फल देकर भगवती मर्यादा की रक्षा करती हैं।

◆◆प्रार्थना◆◆

कुल-मार्ग के सभी सङ्केतों का पालन करनेवाली भगवती ईश्वरी श्रीललिताम्बा, मेरे अन्तर्याग को सफल बनावें।

***

(९२) श्रीकुलाङ्गना

कुल-स्त्री, जो वंश-परम्परा की मर्यादा के अनुसार पाति-व्रत आदि गुणों से युक्त है। जिस प्रकार **कुल-स्त्री** लज्जा, सङ्कोच आदि गुणों से गुप्त रहती है, उसी प्रकार यह **शाम्भवी विद्या** भी अविद्या-रूपी आवरणों से आवृत्त रहती है। '**कुलार्णव**' भी कहता है–

अन्यास्तु सकला विद्याः, प्रकटा गणिका इव।
इयं तु शाम्भवी विद्या, गुप्ता कुल-वधूरिव।।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! जो भक्त-जन विशुद्ध अन्तः-करण से सुवासिनी सौभाग्यवती को आपका 'कुलाङ्गना'-स्वरूप समझकर सर्वोपचारों से पूजन करते हैं, उन्हें आप धन-धान्य से पूर्ण करती हो। इसमें सन्देह नहीं।

***

(९३) श्रीकुलान्तःस्था

कुल के अन्त में रहनेवाली अर्थात् **प्रमातृ** और **प्रमेय** के मध्य में **प्रमाण**-रूप से स्थिता, या **कुल-शास्त्र** के मध्य में **ज्ञेय भाव** से रहनेवाली, अथवा **कुल** अर्थात् प्रति-वंश में पूज्या (पूज्यत्व-भाव से)।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! आप 'कुल' अर्थात् सहस्त्र-दल-कमल की कर्णिका के मध्य विन्दु में विराजती हो, इसके कारण आपका नाम 'कुलान्तस्था' है। आपके इस नाम के ध्यान, चिन्तन से भक्त-जन सहस्त्रार से झरित अमृत का पान करने में समर्थ होते हैं, इसमें सन्देह नही।

***

(९४) श्रीकौलिनी

कुल और अकुल के सम्बन्ध को 'कौल' कहते हैं–

कुलेऽकुलस्य सम्बन्ध, कौलमित्यभिधीयते।

इस प्रकार शक्ति और शिव का सामरस्य करनेवाले अर्थात् चित् (शक्ति) और अचित् (जड़ स्थाणु-द्योतक शिव) के समझनेवाले को 'कौल' कहते हैं। कुण्डली-पथ (शक्ति-पथ वा मार्ग) पर चलनेवाले योगी (हठ-योगी, राज-योगी, मन्त्र-योगी इत्यादि) को 'कौल' कहते हैं। स्वात्म-देवता इसी पथ से चलकर परात्माऽनुभव करती है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! जो भक्त-जन शिव और शक्ति के सामरस्य की रसिका (कौलिनी) के रूप में आपको ध्याते हैं, भजते हैं, वे संसार में सर्व-समर्थ होते हैं। इसमें सन्देह नहीं।

***

(९५) श्रीकुल-योगिनी

कुल-योग करनेवाली। कुल-योग है–'शक्ति-शिव-योग' या अधः सहस्त्रार और ऊर्ध्व-सहस्त्रार का संयोग। इसका अनुभव 'कुण्डली-योग' के अभ्यास से होता है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! जो भक्त-जन 'शिव-शक्ति-रूप' कुलों को संयुक्त करनेवाली 'कुल-योगिनी' के रूप में आपका पूजन करते हैं, उन्हें आप कृष्ण जैसा योगीश्वर बनाती हो।

***

(९६) श्रीअकुला

जिसके कुल अर्थात् देह, वंश आदि का पता न हो। इस प्रकार 'अकुला' से अजा का बोध होता है। अथवा 'अकुला' से अकुल अर्थात् शिव उसकी सह-धर्मिणी (स्त्री) से तात्पर्य है।

◆◆स्तुति◆◆

हे शाम्भवी विश्वेश्वरी माता श्रीललिताम्बा! शरीर, वंश और आचार–इन तीनों को 'कुल' कहते हैं। ये तीनों ही आप में न होने के कारण आप 'अकुला' कही जाती हो। जो भक्त-जन इस रूप में आपको जानने का प्रयास करते हैं, वे जीवित रहते मोक्ष की प्राप्ति करते हैं, इसमें सन्देह नहीं है।

***

(९७) श्रीसमयान्तःस्था

काल के अन्त तक वा अन्त में रहनेवाली। इससे **काल-परिच्छेद-रहिता** से तात्पर्य है, जो **पर-ब्रह्म** की एक विशिष्ट लक्षणा है। '**समय**' का सङ्केतार्थ है–**दहराकाश**। इसके मध्य-वर्ती चक्र में पूजा आदि। ऐसे भाव में ही '**समय**' का प्रयोग '**तन्त्र-पञ्चक**' में किया गया है।

'**समय**' का दूसरा अर्थ है, जो साम्य प्राप्त करता है अर्थात् **शिव–समं साम्यं याति प्राप्नोति इति समयः**। शक्ति और **शिव** के साम्य पाँच प्रकार के हैं–१ **अधिष्ठान-साम्य**, २ **अवस्थान-साम्य**, ३ **अनुष्ठान-साम्य**, ४ **रूप-साम्य** और ५ **नाम-साम्य**। संक्षेप में इससे **शिव** से **शक्ति** के नित्य अविना-भाव-सम्बन्ध का बोध होता है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! 'आगम' के अनुसार हृदय के चक्र में आपकी पूजा करने को 'समयाचार' कहते हैं। 'हृदय-चक्र' में पूजा करने पर आप स्वतः प्रकाशित होती हो।

***

(९८) श्रीसमयाचार-तत्परा

'**समयाचार**' में आसक्ता। 'समयाचार' बड़ा ही रहस्य-मय है। '**भास्कर राय**' लिखते हैं कि यह मात्र गुरु से ही जाना जा सकता है–**गुरु-मुखैक-वेद्यः समयाचारः**।

'**रुद्रयामल**' के दश पटलों में '**समयाचार**' का वर्णन किया गया है। अथवा **कुण्डली**-रूपी **प्राण-शक्ति** का **पर-शिव** के सङ्ग सामरस्य कराने में और पुनः **मूलाधार** में लाने में जो समय लगता है, उसे '**समयाचार**' कहते हैं।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! समयाचार अर्थात् अन्तर्याग-प्रधान विधि में विशेष प्रेम के कारण आप 'समयाचार-तत्परा' कहलाती हो। जो भक्त-जन 'समयाचार' को अपनाते हैं और 'अन्तर्याग' करते हैं, वे आपके विशेष कृपा-पात्र बनते हैं। इसमें सन्देह नहीं।

***

(९९) श्रीमूलाधारैक-निलया

'**मूलाधार-चक्र**' में ही जिसका वास-स्थान है। इससे '**कुण्डली**' का बोध होता है, जो चतुर्दल '**मूलाधार-चक्र**' की कर्णिका के मध्य-त्रिकोण के मध्य-विन्दु में '**स्वयम्भू-लिङ्ग**' को वेष्ठन कर **ब्रह्म-द्वार** के मुख को ढाँप कर सोती है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! तनु के मूल में अर्थात् मूलाधार में जो चतुर्दल अर्थात् चार दलोंवाला कमल है, वही 'कुल-कुण्ड' है। उस चतुर्दल कमल में आप आत्म-शक्ति अर्थात् 'कुण्डलिनी'-रूप से शयन-शीला हो। ऐसे महिमा-मय चतुर्दल कमल मूलाधार में 'कुण्डलिनी'-स्वरूप में आपका जो ध्यान, पूजन करते हैं, उनके हृदय में आप सदा निवास करती हो। इसमें सन्देह नहीं।

***

(१००) श्रीब्रह्म-ग्रन्थि-विभेदिनी

'ब्रह्म-ग्रन्थि' को खोलनेवाली। छहों चक्रों में तीन ग्रन्थियाँ हैं। प्रथम ग्रन्थि का नाम 'ब्रह्म-ग्रन्थि' है, जो दूसरे चक्र 'स्वाधिष्ठान' में है। इसका ज्ञान 'कुण्डली-योग' के साधन से होता है। 'मूलाधार-चक्र' में ब्रह्मा की स्थिति है। इसी से इस ग्रन्थि को 'ब्रह्म-ग्रन्थि' कहते हैं।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! जब भक्त-जन मूलाधार में चतुर्दल कमल के विन्दु में आपका ध्यान करते हुए नित्य पूजते हैं, तंब आप सब प्रकार से प्रसन्न होकर वहाँ होनेवाली कर्माशय की गाँठ, जिसे 'ब्रह्म-ग्रन्थि' कहते हैं, का भेदन कराकर उन्हें ऊर्ध्व रेतस् बनाती हो। इसमें सन्देह नहीं।

***

(१०१) श्रीमणिपूरान्तरुदिता

'मणिपुर-चक्र' को भेदन कर बाहर (ऊपर को) निकली हुई। इस चक्र में सामयिक पूजा मणियों से होती है। इसी से इसे 'मणिपुर' कहते हैं–

नाभौ दश-दल-पद्मे सामयिका पूजायां मणिभिः।
पूर्यते देवी इति तच्चक्रं मणिपूर-पद-वाच्यम्।।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! जो भक्त-जन मूलाधार से जाग्रत तथा मणिपुर में उदित हुई, अत्यन्त लाल वर्णवाली सूक्ष्म मृणाल-तन्तु-सी आपका ध्यान क्षण-भर भी अन्तर्भासिनी दृष्टि से करते हैं, वे योगीन्द्र होकर तत्त्वों को वश में कर लेते हैं। इसमे सन्देह नहीं।

***

(१०२) श्रीविष्णु-ग्रन्थि-विभेदिनी

'विष्णु-ग्रन्थि' का विशेष रूप से भेदन करनेवाली। मणिपुर में विष्णु–शक्ति के साथ रहते हैं। इसी से यहाँ की ग्रन्थि को 'विष्णु-ग्रन्थि' कहते हैं।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! जो भक्त-जन 'मणिपुर-चक्र' का लहलहाती गति से भेदन करते हुए अथवा 'मणिपुर-चक्र' से विलसती हुई 'कुण्डलिनी' के रूप में आपको अन्तर्दृष्टि से देखते हैं, वे पश्यन्ती नामक वाणी का भेदन करते हुए 'विष्णु-ग्रन्थि-विभेदिनी-मूर्ति' के रूप में आपको प्रसन्न कर लेते हैं। इसमें सन्देह नहीं।

***

(१०३) श्रीआज्ञा-चक्रान्तरालस्था

'आज्ञा-चक्र' के अन्तराल में रहनेवाली। भ्रू-मध्य के द्वि-दल-पद्म को, गुरु का अवस्थान होने से, 'आज्ञा-चक्र' कहते हैं। इस चक्र के अन्तराल में आने पर 'रुद्र-ग्रन्थि' का भेदन करना पड़ता है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! जो भक्त आज्ञा-चक्र के अन्तराल में स्थित रहनेवाली, भृकुटी के बीच द्वि-दल-पद्म में विलास करती हुई, आपको ध्यान से देखते हैं, उनके आदेशों को देव-दानव-नर सभी पालन करते हैं।

***

(१०४) श्रीरुद्र-ग्रन्थि-विभेदिनी

'रुद्र-ग्रन्थि' का भेदन करनेवाली। अनाहत और विशुद्ध-चक्र-द्वय की यह ग्रन्थि है। श्रीविद्या के चार खण्ड हैं–१ आग्नेय, २ सौर, ३ सौम्य और ४ चन्द्र-कला। इन्हें वाग्भव, काम-राज, शक्ति और तुरीय कहते हैं। वाग्भव-खण्ड–'ब्रह्म-ग्रन्थि' का, काम-राज-खण्ड–'विष्णु-ग्रन्थि' का और शक्ति-खण्ड–'रुद्र-ग्रन्थि' का द्योतक है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! जो भक्त-जन भृकुटी के मध्य आपकी रुद्र-ग्रन्थि-विभेदिनी मूर्ति का ध्यान करते हैं, वे वायु और आकाश तत्त्व पर अधिकार कर लेते हैं। रुद्र भगवान् स्वयं भी उनकी सहायता करते हैं, जिससे उनके लिए सहस्रार से झरित अमृत का पान अति सुलभ हो जाता है।

***

(१०५) श्रीसहस्राराम्बुजारूढ़ा

'सहस्र अर' अर्थात् हजार दलों के पद्म पर बैठी। इससे ब्रह्म-रन्ध्र में रहनेवाली का बोध होता है। श्रुति भी कहती है–'ब्रह्म-रन्ध्रे महा-स्थाने, वर्तते सततं शिवा' तथा 'उच्चारयेत् परां शक्तिं, ब्रह्म-रन्ध्र-निवासिनीं' (योग-शिखोपनिषत्)।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! जो भक्त-जन मूलाधार में कुल-कुण्ड से उठकर, छहों चक्र-रूप छः मार्गों को पार कर सहस्रार कमल में, पर-शिव को आलिङ्गित करने के लिए आपका ध्यान करते हैं, उनके हृदय में आप शोभा पाती हो और वे नित्य अमृत-पान कर अमर हो जाते हैं।

***

(१०६) श्रीसुधाऽऽसाराभि-वर्षिणी

उक्त सहस्र-दल कमल की कर्णिका में संलग्न (अमा-कला से) अमृत के 'आसार' अर्थात् धारा-सम्पात की वर्षा करनेवाली। श्रुति भी कहती है–'अमृतस्य धारा बहुधा दोहमानम् । चरणं नो लोके सुधिनां दधातु' अर्थात् भुवन में अमृत की धारा को बहुत तरह से चुवाता हुआ चरण हमें 'सुधिना' अर्थात् अमृत-मय करे।

तात्पर्य यह है कि जिस 'चरण' (देवता) का ध्यान कर हम अमृत-पान करते हैं, वह हमें अमरत्व प्रदान करे।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! भक्त-जन सहस्त्रार में पहुँचकर आपके पदाम्बुज को पूजते हुए, वहाँ के कर्णिकास्थ चन्द्र से बरसनेवाली सुधा के पान से चिरञ्जीवी होते हैं। इसमें सन्देह नहीं।

***

(१०७) श्रीतडिल्लता-सम-रुचिः

विद्युत् की 'लता' अर्थात् रेखा के सदृश आभावाली है। श्रुति भी कहती है–'विद्युल्लेखेव भास्वरा।' 'विद्युत' से ब्रह्म का बोध होता है (वृहदारण्यक)–'विद्युद् ब्रह्मेत्याहुर्विदानाद्। विद्युद् विद्यत्येनं पाप्मनो, य एवं वेद, विद्युद् ब्रह्मेति। विद्युद् हि एव ब्रह्म।' तैत्तिरीय भी कहती है–'बलमिति विद्युत्' अर्थात् 'विद्युत्'–शक्ति है।

प्रश्न उठता है कि ब्रह्म वा मूल आद्या-शक्ति को 'विद्युत्' क्यों कहते हैं ? इसका उत्तर श्रुति (अथर्व-शिर) इन शब्दों में देती है–'अथ कस्मादुच्यते वैद्युतं ? यस्मात् उच्चार्यमाण एव व्यक्ते महसि तमसि द्योतयति' अर्थात् जिसके 'उच्चारण' (स्मरण) करते ही घोर अन्धकार में प्रकट होकर प्रकाश फैलता है। भावार्थ यह है कि जिसके मनन वा स्मरण करने पर, कैसा ही अज्ञानी क्यों न हो, उसके हृदय के अन्धकार (अज्ञान) का नाश होकर उसमें प्रकाश अर्थात् 'ज्ञान' हो जाता है। इससे 'परं-ज्योति' का बोध होता है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! तड़ित् अर्थात् बिजली के समान कान्ति के रूप में आप जिनके हृदय में प्रकाशित होती हो, वे आत्म-निष्ठ भावना-सिद्ध और जीवन्मुक्त होते हैं।

***

(१०८) श्रीषट्-चक्रोपरि-संस्थिता

छहों चक्रों के ऊपर रहनेवाली अर्थात् सहस्त्रार के ब्रह्म-रन्ध्र-स्थित पर-विन्दु में भगवती रहती हैं।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! आप हम भक्त-जनों के जीवन को सु-समृद्ध बनाने और प्राणों को बलवान बनाने के लिए षट्-चक्रों पर आरूढ़ होकर, सहस्त्रार से अमृत बरसाती हो।

***

(१०९) श्रीमहा-शक्ति (श्रीमहासक्ति)

'महे उत्सवे आसक्तिर्यस्याः सा' अर्थात् 'उत्सव' (शक्ति-शिव-सामरस्य) में 'आसक्ति' या तत्परता जिसकी है। 'मह' शब्द तेज-वाचक भी है–'मह उत्सव तेजसः' (अमर)। तब अर्थ होगा–'तेज की आसक्ति'।

'महा+आसक्तिः' का अर्थ है महती या बड़ी 'आसक्ति' अर्थात् सभी प्रकार की शक्ति या संयोग। यह संयोग सम्बन्ध-वाचक है, जो शक्ति का शिव से और चित् का अचित् से होता है।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! 'शिव' और 'शक्ति' के संयोग को 'मह' कहते हैं और इस 'मह' में भगवती श्रीललिताम्बा की आसक्ति अथवा प्रेम होने के कारण, तुम सदा इसके लिए प्रयत्नशील रहो। 'मह'-रूपी तेज या प्रकाश हेतु तुम सदा प्रयास करते रहो।

***

(११०) श्रीकुण्डलिनी

कुण्डल-सदृश आकारवाली–'कुण्डले अस्याः स्त इति कुण्डलिनी।' इसकी आकृति सर्पिणी-जैसी है। मन्त्र-शास्त्र में वाग्भव-वीज 'ऐं' की संज्ञा 'कुण्डलिनी' है। इस प्रकार भगवती वाग्भव-वीज-रूपा हैं।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! जपा पुष्प से भी अधिकाधिक लाल वर्णवाली, कमल की डण्डी के सूत के समान सूक्ष्म, स्वयम्भू-लिङ्ग की ओर प्रवृत्त जीवनी-शक्ति, इड़ा वा पिङ्गला के बीच सूक्ष्मातिसूक्ष्म सुषुम्णा में लहलहाती हुई, भुजङ्गी अर्थात् सर्पिणी की भाँति कुण्डलिनी-शक्ति-रूपा भगवती श्रीललिताम्बा का सदा स्मरण किया करो।

***

(१११) श्रीविस-तन्तु-तनीयसी

कमल के नाल के सूत-जैसी पतली अर्थात् सूक्ष्म रूपवाली। यह नाम श्रुति-वाक्य 'अणोरणीयान्' रूपी ब्रह्म का द्योतक है। इसकी सूक्ष्मता बताते हुए कहा है कि केश की सूक्ष्मता के शतांश से दस सहस्त्र गुनी यह पतली है–'वालाग्र-शत-भागस्य शतधा कल्पितस्य च·····।'

ब्रह्म-सूत्र (२१)–'अदृश्यत्वादिगुणको धर्मोक्तेः' से भी इसका प्रतिपादन होता है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! जो भक्त-जन आपको कमलिनी के नाल के सूत-जैसे सूक्ष्म तार के समान सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूप में ध्यान करते हैं और मन से कल्पित द्रव्यों से पूजते हैं, वे सभी विद्याओं में पारङ्गत हो जाते हैं।

***

(११२) श्रीभवानी

'सरस्वती-रहस्योपनिषद्' में कहा है–'भव-सन्ताप-निर्वापण-सुधा-नदी' अर्थात् संसार के ताप-त्रय की नाश करनेवाली अमृत-धारा। यह नाम काली के 'काल-भैरव-नाशिनी' और दुर्गा के 'दुर्गति-नाशिनी' नाम के सदृश ही है।

देवी-पुराण में लिखा है–

रुद्रो भवो भवः कामो, भवः संसार-सागरः।
तत् प्राणनादियं देवी, भवानी परिकीर्तिता।।

अर्थात् रुद्र (शिव)–'भव' हैं। काम (मदन) का नाम 'भव' है और संसार का नाम भी 'भव' है। इसलिए उनके 'प्राणन' अर्थात् इन तीनों में से 'रुद्र' को आश्वासन देने से, 'काम' को जीवन देने से और 'संसार' को चैतन्य देने से देवी 'भवानी' कही गई हैं। 'प्राणन'–प्र-अन, श्वासन। प्राणन=जीवन। तीसरी व्युत्पत्ति सबसे अधिक युक्त है–

यस्माद् भवन्ति भूतानि, ताभ्यः सा भावयन्ति च।
भवनाद् भावनाच्चैव, भूतानां स भवः स्मृतः।।

इससे पर-ब्रह्म का बोध होता है। अथवा 'भवं जलं, जीवन-रूपं, आनयति इति भवानी।' इससे विश्व की पालनेवाली का बोध होता है।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! कल्याणकारी कर्म जिनको प्रिय हैं, जो भद्र-भावों को सदा धारण करते हैं, जो संसार में महान् भागवान् हैं वे भव, भवानी श्रीललिताम्बा को अपने कल्याण के लिए भजते रहते हैं, तुम भी उन्हें सदा भजते रहो और 'भवानी-भवानी' का भजन करते हुए अपने अभीष्ट की प्राप्ति करो।

***

(११३) श्रीभावना-गम्या

भगवती 'भावना' से ही जानी जा सकती हैं। 'भावना' दो प्रकार की होती है–१. शाब्दी, २. आर्थी (अर्थ-रूप की भावना)। 'शाब्दी' है--गुरूपदिष्ट वाक्यों की निष्ठा सहित भावना। 'आर्थी'–प्रवृत्ति-रूपिणी है।

'योगिनी-हृदय' के अनुसार 'भावना' तीन प्रकार की होती है–१. अपरिणामिनी, २. सम-परिणामिनी और ३. विषम-परिणामिनी।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! हे भुवनेश्वरि! हे भुवनों की अधिनायिके! आपकी सत्ता भाव-प्रधान है। आप भाव-मयी हो। भाव ही आपका वैभव है। भक्त-जनों को भावना से ही आप प्राप्य होती हो।

***

(११४) श्रीभवारण्य-कुठारिका

संसार-रूपी जङ्गल को काटनेवाली कटारी अर्थात् अविद्या-जाल को काटनेवाली या ज्ञान देनेवाली महा-विद्या।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! जो भक्त-जन आपको भक्ति के द्वारा भजते, पूजते तथा स्मरण करते हैं, उनके लिए आप दया के रस की पाण लगाने से अत्यन्त तेज हुई कुल्हाड़ी के समान हो, जो संसार-रूपी जङ्गल को छिन्न-भिन्न कर डालती है। (कुल्हाड़ी आदि शस्त्रों को तेज करने के लिए जो वनस्पतियाँ लगाई जाती हैं, उन्हें 'पाण' कहते हैं)।

***

(११५) श्रीभद्र-प्रिया

'भद्र' अर्थात् सुन्दर। महा-सुन्दरी सुन्दरता की प्रिया है। अथवा 'भद्र' अर्थात् मङ्गल। इससे 'मङ्गलानां मङ्गलं'–पर-ब्रह्म का बोध होता है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! आप सदा मङ्गलों से प्रसन्न रहती हो, आप सदैव भक्त-जनों को मङ्गल देती रहती हो। इसीलिए विद्वान् लोग सभी प्रकार के मङ्गल-कार्यों में आपको भजते हैं, स्मरण करते हैं और पूजते हैं।

***

(११६) श्रीभद्र-मूर्तिः

सौम्य-मूर्ति या सौम्य ब्रह्म। कल्याण-मूर्ति अर्थात् कल्याण करनेवाली।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! अनेक सुकृतों से प्रगट होनेवाली आपकी भव्य भद्र-मूर्ति का शुभ दर्शन, विशाल भाग्यवाले भक्त-जन बड़े भाग्य-भोग से संसार की भीति को दूर करने के लिए प्राप्त करते हैं।

***

(११७) श्रीभक्त-सौभाग्य-दायिनी

भक्तों को 'सौभाग्य' अर्थात् सुष्ठु (सुन्दर) 'भाग्य' देनेवाली। अथवा सुन्दर 'भग' अर्थात् ऐश्वर्य जिसके है, वह 'सुभगा' अर्थात् ललिता।

'सौभाग्य' अर्थात् ललिता के भाव, जो उससे अभिन्न हैं–

भग पदार्थाः शोभना यस्यां सा सुभगा।
ललितैव तस्याः भावः सौभाग्यं तद्भेदः।।

भक्तों को इस भाव की देनेवाली।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! आप भक्त-जनों को सदा सुख देती हो और ऐश्वर्य प्रदान करती हो तथा सद्-भाग्यवान् बनाती हो। इस कारण आप 'भक्त-सौभाग्य-दायिनी' नाम से प्रसिद्ध हो।

***

(११८) श्रीभक्ति-प्रिया

भक्ति से सन्तुष्ट होनेवाली। भक्ति मुख्यत: दो प्रकार की होती है–१. **मुख्या** और २. **गौणी** अर्थात् १. परा और २. **अपरा**।

'भक्ति-मीमांसा-सूत्र' भक्ति को ईश्वर में 'परा अनुरक्ति' बताता है–'**सा पराऽनुरक्तिरीश्वरे।**'

'**गौणी**' (अ-प्रधाना) भक्ति–समाधि-सिद्धि है। यह सेवा-रूपा अर्थात् **द्वैत-भाव** की है, जब कि '**परा भक्ति**'–**अद्वैत-भाव** की है।

'**गीता**' के अनुसार **भक्ति** चार प्रकार की है। ज्ञानी की भक्ति ही **परा-भक्ति** है। '**आदित्य**' और '**गरुड़-पुराण**' में भक्ति आठ प्रकार की बताई गई है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! आप में परम अनुराग रखनेवाले, आप में निमग्न रहनेवाले, आपकी पूजा करनेवाले, आपके गुण-गान करनेवाले, सदा सद्-भावना से आपको भजनेवाले, सभी भक्तों पर आप भक्ति-प्रिया होने के कारण अवश्य ही प्रसन्न होती हो।

***

(११९) श्रीभक्ति-गम्या

भगवती '**भक्ति**' से जानी जा सकती हैं। '**निर्गुण**' निराकार-स्वरूप में और प्रत्यक्ष देखी जाती हैं–'**सगुण**'-स्वरूप में। प्रत्यक्ष दर्शन के सम्बन्ध में श्रुति का कहना है–

कश्चिद् धीरः प्रत्यगात्मानमैक्षदावृत्त-चक्षुरमृतत्वमिच्छन्।

अर्थात् किसी धीर योगी ने आँखें घुमाते हुए ('**समाधि**'-काल का लक्षण) अपने अमरत्व की इच्छा करते हुए **प्रत्यगात्मा जीवात्मा** को देखा। '**साक्षात्कार**' के सम्बन्ध में संशय-निवारण के लिए स्वयं भगवान् कृष्ण की गीतोक्ति यहाँ उल्लेखनीय है–

भक्त्या त्वनन्यया शक्यमहमेवं विधोऽर्जुन!।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन, प्रवेष्टुं च परन्तप!।।

अव्यक्त ब्रह्म भी **भक्ति** के द्वारा व्यक्त (प्रत्यक्ष) हो जाता है। अथवा भक्ति-लक्षणाओं से **भगवती** बोध्या (गम्या) हैं, ऐसा बोध होता है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! आप अद्वैत भाव से सराबोर हो। बुद्धि और विशुद्ध भक्ति के द्वारा ही भक्तों को प्राप्त होती है। भक्ति-ज्ञान से ही आप मिलती हो, और-और कारणों से नहीं मिलती हो।

***

(१२०) श्रीभक्ति-वश्या

भगवती भक्ति से वशीभूत हो सकती हैं। भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं–

अहं भक्त-पराधीनो, ह्यस्वतन्त्र इव द्विजः।
साधुभिर्ग्रस्त-हृदयो, भक्तर्भक्त-जन-प्रियः।।

अर्थात् मैं भक्त की भक्ति से बद्ध हूँ। साधु भक्त ने मेरे हृदय को छीन लिया है। इसी कारण भक्तों का पद ज्ञान-योगियों और कर्म-योगियों से ऊँचा है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! आपकी भक्ति आपको यहाँ इस संसार में नाना रूपों में लाती है। आपकी भक्ति ही आपका वेष बदलवाती रहती है। आप भक्ति के वश हो अनेक बार, अनेक तरह के वेश बदलकर संसार में अवतार लेती हो। आपकी भक्ति ही आपको आपके भक्त-जनों के सम्मुख उपस्थित कराती है।

***

(१२१) श्रीभयापहा

भय को दूर करनेवाली। इसका एक तात्पर्य है–**आधि-व्याधि** के भयों का नाश करनेवाली। दूसरा है–मुक्ति-दायिनी होने से **महा-भय** अर्थात् **जन्म-मरण** के भय को हरनेवाली। इसी से इसके सच्चे उपासक **वीर** होते हैं, जो **इन्द्रादि** देवताओं से भी नहीं डरते।

श्रुति ने ठीक कहा है–'**आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान्, न विभेति कुतश्चन**' अर्थात् ब्रह्मानन्द पाकर विद्वान् ज्ञानी किसी से नहीं डरता।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! माता श्रीललिताम्बा का नाम, जपनेवालों के लिए संसार के सभी प्रकार के भय को दूर करनेवाला है। तुम इसे सदा जपते रहो और सभी प्रकार के भय से मुक्त हो जाओ।

***

(१२२) श्रीशाम्भवी

'**शम्भोरिदं शाम्भवः स्त्री-लिङ्गे ङीप्-शाम्भवी** का वाच्यार्थ है–**शम्भु** या **शिव** के सम्बन्धी–**शाम्भव**, उसकी स्त्री **शाम्भवी**। अथवा '**शाम्भवानामियं माता 'शाम्भवी'** अर्थात् **शम्भु** के उपासकों–**शाम्भवों** की यह माता है, इससे इसका नाम '**शाम्भवी**' है। अथवा **योग-शास्त्र** की '**शाम्भवी**'-मुद्रा-स्वरूपा है।

अथवा कल्प-सूत्रोक्त '**शाम्भवी**'-दीक्षा से उपासिता है। **दीक्षा** तीन प्रकार की होती है–**१. शक्ति-दीक्षा, २. शाम्भवी दीक्षा, ३. मान्त्री दीक्षा।** श्रुति (**वह्वृचोपनिषत्**) भी कहती है–'**सैषा शाम्भवी विद्या।**'

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! जो भक्त-जन आपको शम्भु पर-शिव की पट्ट-राज्ञी अथवा शाम्भवों की माता के रूप में ध्यान करते हैं, उनका सभी प्रकार से कल्याण होता है। इसमें सन्देह नहीं।

***

(१२३) श्रीशारदाऽऽराध्या

'शारदा' (सरस्वती) की आराध्या देवता। अथवा शरद् ऋतु के आदि में जिसकी आराधना हो (दुर्गा)–'शारदे शरद्-ऋतौ वर्षादौ वा आराध्या।'

अथवा 'शारदैर्विशारदैः पण्डितैः आराध्या' अर्थात् तत्त्व-वेत्ताओं की उपासिता विद्या अर्थात् महा-रहस्य-विद्या।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! शारद समय में 'वशिनी' आदि वाग्-देवताएँ और विद्वान् आपका विशेष रूप से यजन-भजन-पूजन-आराधना करते हैं। ज्ञान देनेवाली शारदाराध्या भगवती के रूप में आप मुझे श्री-सम्पत् प्रदान करो।

***

(१२४) श्रीशर्वाणी

'शर्व' (शिव) की पत्नी। परम-शिव की 'क्षिति'-मूर्ति का नाम 'शर्व' है। इस रूप में यह 'सुकेशी' कही जाती है।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! कुल-रहित, जाति-विहीन, बान्धव-रहित 'शर्व' अर्थात् भगवान् शिव की जीवनी-शक्ति 'शर्वाणी' के रूप में हमारा सभी प्रकार से मङ्गल करिए।

***

(१२५) श्रीशर्म-दायिनी

'शर्म' अर्थात् सुख। भगवती पर-सुख अर्थात् मोक्ष और अपर-सुख अर्थात् भोग–दोनों देती हैं। कहा भी है–'श्रीसुन्दरी-पूजन-तत्पराणां भोगश्च, मोक्षश्च करस्थ एव।'

◆◆प्रार्थना◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! आप करुणा की सागर हो। आपका अकारण प्रागट्य होवे, जिससे मानव-मात्र सुखी होवे तथा चराचर जगत् का कल्याण होवे।

***

(१२६) श्रीशाङ्करी

'शं सुखं करोति इति शङ्करः' अर्थात् शङ्कर का अर्थ है–सुखी करनेवाला।

अथवा 'शं करे यस्य सः' अर्थात् जिसके हाथ में सुख है।

अथवा 'शङ्करस्येयं शाङ्करी' अर्थात् शङ्कर की शक्ति है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! 'शं' अर्थात् कल्याण जिसके 'कर' अर्थात् हाथ में है, उन 'शङ्कर' की शक्ति 'शाङ्करी' आप हो। पर-शिव की महा-शक्ति 'शाङ्करी' के रूप में जो भक्त-जन, विल्व-पत्र एवं सुगन्धित पुष्पों से पूजन करते हैं, वे सभी सम्पदाओं से युक्त होकर शङ्कर-भाव, शिव-भाव को प्राप्त करते हैं अर्थात् सबका कल्याण करने में समर्थ होते हैं।

***

(१२७) श्रीश्री-करी

'श्रियः करोति इति श्री-करी' अर्थात् सम्पत्-करी या सौभाग्यवान् करनेवाली (देखिए प्रथम नाम **'श्री'** की व्याख्या)।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! जिसके हाथों में शोभा, सम्पदा, लक्ष्मी, ऐश्वर्य है, उन 'श्री-करी' भगवती श्रीललिताम्बा का भजन-पूजन-आराधन करो, जिससे तुम्हारे हाथों, दृष्टि व वचनों में सभी प्रकार की श्रियों का निवास हो जाए।

***

(१२८) श्रीसाध्वी

पति-व्रता। यहाँ **काल-त्रय** अर्थात् भूत, भविष्य और वर्तमान् में अन्य पति-योग के अभाव में साधारण पातिव्रत्य से तात्पर्य है।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! उन महा-शक्ति श्रीललिताम्बा की आराधना करो, जो स्त्रियों के सतीत्त्व को बढ़ाती हैं, जिससे तुम भी अपने आश्रितों के कार्यों को पूरा कर सको।

***

(१२९) श्रीशरच्चन्द्र-निभानना

शरत्-कालिक चन्द्रमा के सदृश मुख-मण्डलवाली। जिस प्रकार शरद् ऋतु में आकाश निर्मेघ हो निर्मल रहता है और जिससे चन्द्र की निर्मल चन्द्रिका के कारण सुन्दरता अकथनीय रहती है, उसी प्रकार निर्मल हृदयाकाश में चमकनेवाली सुन्दर मुखवाली महा-सुन्दरी हैं।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! जो भक्त-जन शरत्-काल के चन्द्र के समान आपके मधुर मन्द-हास-रूप से नेत्रों द्वारा अमृत का पान करते हैं, वे तीनों प्रकार के-दैहिक, दैविक और भौतिक तापों से मुक्त होकर आनन्द से सराबोर हो जाते हैं।

***

(१३०) श्रीशातोदरी

'शान्तं कृशं उदरं यस्याः सा' अर्थात् छोटे पेटवाली। अथवा 'शतोदरं-अनन्त-गुहं तस्य शतोदरस्य हिम-वतोऽपत्यं शतोदरी हैम-वती' अर्थात् असंख्य गुहाएँ रखनेवाले हिमालय की सन्तान हैम-वती।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! आपका उदर पतला होता हुआ भी विश्व के उद्भव का कारण है। सुखों का सच्चा निधान आप ही हो। हमें आपकी कृपा सदा प्राप्त होती रहे।

***

(१३१) श्रीशान्ति-मती

शान्ति या पूर्ण शान्तिवाली। इससे भगवती–'औद्धत्य-भाव' से रहिता हैं, ऐसा बोध होता है। अथवा इसका तात्पर्य अनुपहित चेतना से है, जिसमें किसी प्रकार का क्षोभ उत्पन्न नहीं हो सकता।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! आप 'शान्ति' अर्थात् शम प्रधान हो। शान्ति की दाता हो। शान्ति के साथ-साथ 'मति' अर्थात् बुद्धि-स्वरूपा भी हो। इन दोनों रूपों के अनुरूप हमें 'शान्ति' और 'मति' दोनो प्रदान करो।

***

(१३२) श्रीनिराधारा

जिसका कोई आधार न हो। इससे 'अजा' और 'स्वतन्त्रा' का बोध होता है। अथवा समस्त विश्व का अधिष्ठान यही है। जिसका अधिष्ठान नहीं है, ऐसा भी तात्पर्य है। अथवा निराधारोपासना विद्या है।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! सारा जगत् माता श्रीललिताम्बा पर स्थित है, किन्तु माता श्रीललिताम्बा का कोई आधार नहीं है, वे निराधार हैं। अतएव एक-मात्र उन्हीं की शरण में रहो।

***

(१३३) श्रीनिरञ्जना

'निर्गतं अञ्जनं यस्याः सा निरञ्जना' अर्थात् कालिमा-रहिता। इससे निर्मला वा अविद्या-रहिता का बोध होता है। अथवा 'नितरां रञ्जनं रागो रक्तिमा यस्यां' अर्थात् बहुत लाली (रङ्ग) है जिसमें।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! प्रपञ्च अर्थात् विश्व के सभी पदार्थ आप ही में कल्पित हैं, आप ही से भासते हैं। सभी पदार्थों में विराजित होती हुई आप प्रकट नहीं होती हो, 'निरञ्जना' रहती हो।

***

(१३४) श्रीनिर्लेपा

सक्ति-सम्बन्ध (फलासक्ति) से रहिता। इस सम्बन्ध से कर्म-सम्बन्ध का ही तात्पर्य है अर्थात् भगवती–मात्र द्रष्ट्री व साक्षी हैं। काम करानेवाली नहीं, काम करनेवाली भी हैं, तो भी कर्म-फलासक्ति-रहिता ही हैं। 'सर्व-भूतात्म-भूतात्मा, कुर्वन्नपि न लिप्यते'–'गीता', ५/७। यही भगवती का असली रूप है। 'गीता' (१४/४) में भी कहा है–'न मां कर्माणि लिम्पन्ति।'

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! सारा संसार माता श्रीललिताम्बा से सृजित होने पर भी उनको संसार से कोई लगाव नहीं रहता। वे 'निर्लेपा' हैं। निर्लेपा माता श्रीललिताम्बा का ध्यान करते हुए तुम उनके मन्त्र का जप करो। ऐसा करने पर तुम्हें कर्म-बन्धन नहीं होगा।

***

(१३५) श्रीनिर्मला

विशुद्धा वा मल-रहिता। 'मल' मुख्यतः पाँच प्रकार के हैं–१. आणव्य, जो प्रत्येक जीव में रहता है, २. कार्मिक, जो ब्रह्मा और विष्णु में है, ३. मायिक, जो रुद्र में है, ४. प्राकृतिक, जो ईश्वर में है और ५. अहङ्कारिक, जो सदा-शिव में है। केवल भगवती में किसी प्रकार का मल नहीं है।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! माता श्रीललिताम्बा कायिक वाचिक, मानसिक तथा आणव, कार्मिक, मायिक–इन तीनों प्रकार के मलों से रहित हैं। अतएव उनकी आराधना कर अपने को शीघ्रातिशीघ्र त्रि-विध मलों से दूर, अति दूर कर लो।

***

(१३६) श्रीनित्या

नित्या सत्ता। यह 'अपचयोपचय' (घटना-बढ़ना) से रहिता का भी द्योतक है।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! माता श्रीललिताम्बा भूत, वर्तमान तथा भविष्य–तीनों में नियत रहती हैं। अतएव उनकी नित्य आराधना कर सुयश को नित्य प्राप्त करते रहो।

***

(१३७) श्रीनिराकारा

भगवती का आदि स्वरूप। इससे निर्गुणता का बोध होता है।

◆◆स्तुति◆◆

हे नित्य चित्-संवित्-रूपिणी माता श्रीललिताम्बा! आप में समस्त प्रपञ्च के सभी आकार कल्पित होते हैं, परन्तु आपका कोई आकार उल्लसित नहीं होता। इस प्रकार सर्वत्र व्याप्त आकाश के समान आपके स्वरूप का चिन्तन करनेवाले भक्त-जनों की स्थिति भी अत्यन्त शान्त, निराकार हो जाती है। इसमें सन्देह नहीं।

***

(१३८) श्रीनिराकुला

'निर्गता आकुलता यस्याः' अर्थात् आकुलत्व या सर्वाभाव से रहिता। अथवा 'आकुल' से भाव-प्रधान का निर्देश है। इससे महा-विद्या का अविद्या से सम्पर्क अर्थात् चित् का अचित् से संयोग-सम्बन्ध रहने पर भी 'आकुलत्व' के अभाव का बोध होता है।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! संग्राम के बीच में भण्डासुर ने माता श्रीललिताम्बा को आकुल करने के लिए एक-से-एक बढ़कर माया-प्रधान क्रूर उपाय किए, किन्तु माता श्रीललिताम्बा निराकुला ही रहीं। कुछ भी आकुल न हुईं। अतः तुम भी इनकी आराधना करो, जिससे विषय तुम्हें किसी भी प्रकार से आकुल न कर सकें।

***

(१३९) श्रीनिर्गुणा

गुण-रहिता अर्थात् गुण के विकार से रहिता। 'गुण' के विकार विजातीय पदार्थ होकर ब्रह्म के सर्वत्व वा निर्द्वन्द्वत्व में बाधा पहुँचाते हैं। ब्रह्म-सगुण ही है, निर्गुण नहीं। निर्गुणत्व का बोध हमको तब होता है, जब हम उसे 'अव्यक्त' कहते हैं। ब्रह्म यदि निर्गुण है, तो सगुण कौन है ? दूसरा तो उसके अतिरिक्त है ही नहीं। गुण या धर्म किसके हैं ? सिवा गुणी या धर्मी शक्ति के ?

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! सत्त्व, रजस् और तमस् ये तीनों गुण माता श्रीललिताम्बा से ही उत्पन्न हुए हैं, किन्तु माता उनसे पूर्व भी हैं। अतः वे ही उनसे निवृत्त, दूर भी कर सकती हैं। उन्हें 'निर्गुण' समझकर उनका ध्यान-पूजन करोगे, तो तीनों गुण के विकार तुम्हारे लिए बन्धनकारी नहीं होंगे।

***

(१४०) श्रीनिष्कला

कलातीता। यह भगवती का एक रूप है। कला द्वारा ही क्रिया होती है। अतएव इससे निष्क्रियत्व का बोध होता है। निर्गुण-चिन्ता का भी नाम है 'निष्कला'। 'अंशो नाना व्यपदेशात्'-सूत्र के मनन से इसका स्पष्टीकरण होता है।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! माता श्रीललिताम्बा की कला अर्थात् अंश-भाग नहीं है। आप सदा पूर्ण हैं। यदि तुम इस रूप में इनका ध्यान, पूजन करोगे, तो ऊँचे-से-ऊँचे कलाधार-कला-कौशल विद्यावान् बनोगे।

***

(१४१) श्रीशान्ता

शम-वती। 'शकारोऽन्तो यस्य तद्-रूपा' अर्थात् 'शकार' के अन्त-स्वरूपा अर्थात् अमृत-वीज-रूपा है। 'त्रिपुरोपनिषत्' कहती है-'निष्कलं निष्क्रियं शान्तम् ।'

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! आपका जो भक्त-जन क्षान्ता-क्षमा-रूपवाली अ-कारादि क्ष-कार-पर्यन्त मातृका-माला पर जपादि करता है, वह लक्ष्मी को वश में कर लेता है।

***

(१४२) श्रीनिष्कामा

इच्छा-रहिता। यह ब्रह्म की उस अवस्था का द्योतक है, जब वह अनुपहित चेतनावस्था में रहता है।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! आपसे काम का प्रादुर्भाव होता है और आपसे काम परिपूर्ण होता है। ऐसे आपके 'निष्कामा'-स्वरूप के हम सभी वशीभूत हैं। हम पर आप अपनी कृपा सदा बनाए रहें।

***

(१४३) श्रीनिरुपप्लवा

अनाश-वती अर्थात् जिसका नाश नहीं होता। इससे नित्य सत्ता का बोध होता है। अथवा 'निःशेषेण अतिशयेन उप समीपे एव पिण्डाण्ड एव प्लवोऽमृत-स्त्रावो यस्याः सा निरुपप्लवा' अर्थात् अधिक मात्रा में समीप में ही पिण्डाण्ड ही 'प्लव' अर्थात् अमृत-स्त्राव होता है जिससे। इससे जीव को अमृत पिलानेवाली शक्ति वा विद्या का बोध होता है।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! जिससे उपद्रव, विघ्न नष्ट होते हैं, ऐसी माता श्रीललिताम्बा को पूजो , जो सभी पदार्थ प्रदान करनेवाली पराम्बिका हैं। यदि तुम उनकी आराधना करोगे, तो श्री-लक्ष्मी-सम्पदा-पुत्र-भृत्य और पत्नी के साथ आनन्दित होते हुए निर्विघ्न जिओगे।

***

(१४४) श्रीनित्य-मुक्ता

'नित्यं यथा तथा मुक्ता'–इस व्युत्पत्ति से सर्वदा और सर्वथा बन्धन-रहिता का बोध होता है। 'नित्यं मुक्ता भक्ता यस्याः सा'–इस व्युत्पत्ति के अनुसार जिसके भक्त नित्य-मुक्त अर्थात् जीवन्मुक्त हैं। 'नित्यं मुञ्चति मुच्यते वा नित्य-मुक् तस्य भावास्तत्ता' अर्थात् जो नित्य छुड़ाता है (बन्धन से), उसे 'नित्य-मुक्' कहते हैं और 'ता' से भाव का तात्पर्य है। इससे मोक्ष-रूपा (विद्या) का बोध होता है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! आपके ध्यान में स्थित दृढ भक्तिवाले जब आपको 'नित्य-मुक्ता' अर्थात् नित्या और मुक्ता के रूप में ध्याते और भजते हैं, तब वे आपके तेज में विलीन हो, नित्य मुक्त हो जाते हैं। इसमें सन्देह नहीं।

***

(१४५) श्रीनिर्विकारा

विकार-रहिता। यह सङ्केत सांख्य के महद् आदि २३ विकारों की ओर है। 'सांख्य-तत्त्व-कौमुदी' कहती है–

मूल-प्रकृतिरविकृतिर्महदाद्याः प्रकृति-विकृतयः सप्त।
षोडशस्तु विकारो न प्रकृतिर्न विकृतिः पुरुषः।।

अर्थात् मूला प्रकृति–अविकृति अर्थात् अविकारा है। महदादि सात जो तत्त्व हैं, वे प्रकृति के विकृति-स्वरूप हैं और सोलह जो विकृतियाँ हैं, वे न प्रकृति हैं, न विकृति, किन्तु पुरुष (सम्बन्धी) हैं।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! माता श्रीललिताम्बा सभी प्रकार के विकारों से रहित हैं। आपका अर्चन-पूजन सभी विकारों से दूर करता है। इस कारण मूल-प्रकृति-रूपा माता श्रीललिताम्बा की पूजा करो और सभी विकारों से दूर हो जाओ।

***

(१४६) श्रीनिष्प्रपञ्चा

प्रपञ्च अर्थात् विस्तार अथवा प्रतारण (छल) से रहिता। यह **प्रपञ्चेश्वरी** होकर भी '**प्रपञ्च**'-रहिता हैं। यह स्वयं '**प्रपञ्च**' भी हैं क्योंकि **विश्व-रूपिणी** हैं (विश्व को 'प्रपञ्च' भी कहते हैं)।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! माता श्रीललिताम्बा प्रपञ्च अर्थात् संसार के विस्तार को प्रकट करती हैं, फिर भी आपका उससे कोई लगाव नहीं रहता। अतएव उनकी आराधना करो और उनसे संसार के सत्यार्थ को जान लो।

***

(१४७) श्रीनिराश्रया

जिसका आश्रय वा आधार नहीं है। यह नाम चार्वाक (नास्तिक) के इस मत का कि शरीर के आश्रित ही ब्रह्म है, खण्डन करता है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! आप सबका आश्रय हो। आपका कोई आश्रय नहीं है। इस प्रकार भक्त-जन जब आपका निरन्तर आश्रय कर आपके मन्त्रादि को जपते हैं, तो सर्वत्र वन्दनीय होते हैं। इसमें सन्देह नहीं।

***

(१४८) श्रीनित्य-शुद्धा

सदा निर्मल रहनेवाली। यह 'नहि विज्ञातुर्विज्ञातेर्विपरिलापो विद्यते'–श्रुति के इस वचन का निष्कर्ष है। स्मृतियाँ भी कहती हैं कि 'अत्यन्त-मलिनो देहो, देही चात्यन्त-निर्मलः' अर्थात् देह अत्यन्त मलिन और देही अति निर्मल है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! आप किसी काल में भी मल से युक्त नहीं होती हो। जो भक्त-जन आपके इस निर्मल स्वरूप का ध्यान-पूजन करते हैं, उनके हृदय में तेज-रूप में आप विलास करती हो। इसमें सन्देह नहीं।

***

(१४९) श्रीनित्य-बुद्धा

सर्वदा जागनेवाली अर्थात् चिद्-रूपा। तात्पर्य यह है कि भगवती कभी जड़-रूप में नहीं होतीं, सदा चैतन्य रहती हैं।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! विश्व में जिस महा-शक्ति से प्रबोध उदित होता है, जिसे श्रुति-विज्ञ महा-विद्वान् 'नित्य-बुद्ध' कहते हैं, उन माता श्रीललिताम्बा का आश्रय लेकर तुम भी नित्य बोधवाले हो जाओ।

***

(१५०) श्रीनिरवद्या

जो 'अवद्य' हैं अर्थात् जिनमें कोई निन्दनीय वस्तु नहीं है। श्रुति भी ब्रह्म को 'निरवद्य निरञ्जनं' कहती है। 'अवद्य' नरक को भी क़हते हैं, अतः जिसके प्रसाद से नरक में नहीं जाना पड़ता, उसे 'निरवद्या' कहते हैं–अवद्यान्नरकान्निर्गता यस्याः प्रसादात् सा।'

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! उन माता श्रीललिताम्बा का एकान्त स्थान में निरन्तर ध्यान करो, जिसमें कोई दोष नहीं है, जो निन्दनीय बातों से सर्वथा मुक्त हैं। ऐसा करके तुम सम्पूर्ण जगत् के निदान के कारण को जान सकते हो।

***

(१५१) श्रीनिरन्तरा

अन्तर-रहिता। 'अन्तर' से ही पदार्थ या भाव टूटता है। 'निरन्तर'–अखण्ड धारा को कहते हैं। यह विशेषण है, विशेष्य नहीं। अतः इसके अनेक भाव हैं। समष्टि में अखण्ड ज्योति से और व्यष्टि में सदा जलनेवाली संविदग्नि से बोध होता है, जिसमें ज्ञानी विश्व-भाव को जलाता है।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! जो संसार में निरन्तर रहलेवाली हैं, जो भेद-रहिता हैं और जो ब्रह्म-परमात्मा से अभिन्न हैं, उन निरन्तरा भगवती श्रीललिताम्बा का निरन्तर भजन करो।

***

(१५२) श्रीनिष्कारणा

जिसका कोई कारण न हो अर्थात् स्वयं ही जो सबकी कारण-स्वरूपा हो। श्रुति कहती है–'स कारणं करणाधिपोऽधिपो न चास्य कश्चित् जनिता न चाधिपः' अर्थात् वही कारण है, करनेवाले

का भी ईश्वर है, इसके न जन्म देनेवाले, न ईश्वर कोई हैं। अथवा निःशेष प्रथम कारण जिसमें रहे। इसी भाव से शास्त्रों में भगवती को 'कारणानन्द-विग्रहा' कहा गया है।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! जो संसार के नियत कारणों की भी कारण है और जिसका कोई कारण नहीं है तथा एक-मात्र जो विजय को प्राप्त हो रही है, उन निष्कारणा आद्या महेश्वरी भगवती श्रीललिताम्बा का भजन-पूजन करो।

***

(१५३) श्रीनिष्कलङ्का

पाप-रहिता। श्रुति भी कहती है-'शुद्धम्-पाप-बिद्धम्।'

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! निष्पाप होकर मुक्ति प्राप्त करने के लिए तुम कलङ्क, पाप, दाग से रहित माता श्रीललिताम्बा के गुणों का गायन करो, उन्हें भजो, उनके स्थानों-पीठों-तीर्थों को जाओ।

***

(१५४) श्रीनिरुपाधि

उपाधि-रहिता। 'उपाधि' की व्युत्पत्ति भास्कर राय करते हैं-'उप समीपे आदधति स्वीयं धर्ममित्युपाधिः'अर्थात् अपने समीप में अपने धर्म (गुण) को रखता है, यही उपाधि है।

'उपाधि' की परिभाषा वाचस्पति ने यह की है-'अन्यथा स्थितस्य वस्तुनोऽन्यथा प्रकाशन-रूप उपाधिः'अर्थात् दूसरी तरह से रहनेवाली वस्तु का दूसरी तरह से प्रकाशन ही उपाधि है। जैसे जल ही बरफ रूप से प्रकाशित होता है। इस प्रकार विजातीय गुण की द्योतक 'उपाधि' है।

अथवा 'उपाधि'-अविद्या-जनित है, जिससे रहित होने से भगवती 'निरुपाधि' कहलाती हैं। यही इसका शुद्ध स्वरूप है। उपाधि-रहिता से तात्पर्य है-सखण्ड और अखण्ड-दोनों उपाधियों से शून्या का।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! जीवन-पर्यन्त सुखी-समृद्ध रहने के लिए और अन्त में भगवती के लोक मणिद्वीप में जाकर निवास करने के लिए, 'उपाधि' अर्थात् कपट, दम्भ, लोभ आदि से रहित होकर 'निरुपाधि' भगवती श्रीललिताम्बा को निरन्तर भजते रहो।

***

(१५५) श्रीनिरीश्वरा

जिसका कोई ईश्वर अर्थात् स्वामी नहीं है। यह स्वयं सभी की ईश्वरी या स्वामिनी है। भास्कर राय कहते हैं-

मीमांसा-शास्त्रं सांख्य-शास्त्रं च द्वि-विधं।
सेश्वरं निरीश्वरं चेति तदुभय-रूपत्वान्निरीश्वरा।।

अर्थात् मीमांसा और सांख्य इन दोनों दर्शनों में दो प्रकार के सिद्धान्त कथित हैं–एक ईश्वर-सहित, दूसरा ईश्वर-रहित। भगवती दोनों रूपिणी होने से अर्थात् चित् और अचित्-स्वरूपा होने से 'निरीश्वरा' कही जाती हैं।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! जगत् की आदि-माता श्रीललिताम्बा का आश्रय ग्रहण करो, जिनका कोई ईश्वर नहीं है, जिनसे ईश्वर प्रकट होता है और जो महेश्वर की भी महा-महेश्वरी है।

***

(१५६) श्रीनीरागा

वासना-रहिता या निष्कामा। अथवा 'नीर+अगा' के भाव में 'जल' अर्थात् द्रव-रूपा या चर-रूपा और 'अग' अर्थात् पर्वत इत्यादि न चलनेवाले अचर-रूपा अर्थात् चराचर उभय-रूपा है।

◆◆प्रार्थना◆◆

जिसमें तनिक भी राग, इच्छा, एषणा, वासना नहीं है और जो नीरा अर्थात् जल-स्वरूपा तथा अग अर्थात् अद्रि-स्वरूपा है, ऐसी 'नीरागा' महेश्वरी जगदम्बा में मेरे मन का राग, प्रेम, भक्ति, लगाव स्थिर होवे।

***

(१५७) श्रीराग-मथिनी

काम या इच्छा या वासना की दूर करनेवाली। 'राग' क्लेश-वाचक शब्द है–'राग-द्वेषाभिनिवेशाः क्लेशाः' (योग-सूत्र)।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! राग-रूपी क्लेश को मथनेवाली, भक्त-जनों को वैराग्य देनेवाली, उन महेश्वरी माता श्रीललिताम्बा को भजते रहो, जिनका भजन राग-मन्थन हेतु योगी तथा ज्ञानी करते रहते हैं।

***

(१५८) श्रीनिर्मदा

मद अर्थात् अहङ्कार-रहिता।

◆◆स्तुति◆◆

हे कल्याण-कारिणी माता श्रीललिताम्बा! आप में विचित्र विशेषता है। आप स्वयं तो हाला (मदिरा) प्रिया हो, किन्तु आपके आश्रित रहनेवाले भक्तों के मद को आप रहने नहीं देतीं। इस कारण आपके सभी भक्त मद से रहित हो जाते हैं और वे आपका गुण-गान 'निर्मदा' के रूप में करते हैं।

***

(१५९) श्रीमद-नाशिनी

एक अर्थ है मद या अहङ्कार की नाश करनेवाली, दूसरा है–'मदन+अशिनी' अर्थात् मदन को खानेवाली। मदन–'काम' को भी कहते हैं और धतूरे को भी। यह धतूरे को भी खानेवाली है।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य इन छहों शत्रुओं को जीतने के लिए, तुम शुम्भादि दानवों के मद का नाश करनेवाली चण्डिका भगवती श्रीललिताम्बा का सदा भजन करते रहो।

***

(१६०) श्रीनिश्चिन्ता

चिन्ता से रहिता। चिन्ता के दो अर्थ हैं (विश्व-कोष)–१. दुःख-जनक स्मृति और २. छल–'चिन्ता छले चुल्लिकायाम्'।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! चिन्ता, छल और दुःख-जनक-स्मरण आप में लेश-मात्र भी नहीं है। आप स्वयं 'निश्चिन्ता' हो और अपने भक्तों को भी निश्चिन्त करती हो।

***

(१६१) श्रीनिरहङ्कारा

अहङ्कार से रहिता। अहङ्कार तीन प्रकार का है–१. वैकारिक, २. तैजस, ३. भूतादि।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! वैकारिक, तैजस और भूतादि तीन प्रकार के अहङ्कार आपने हम जीवों को प्रदान किए हैं, किन्तु अखिल विराट् विश्व को अपने में सदैव धारण करती हुई, विश्व-रूपिणी होकर भी स्वयं अहं-भाव, अहङ्कार से रहित हो। इस प्रकार अभिमान को त्यागने का निर्देश देते हुए आपके विलक्षण स्वरूप का जो आश्रय ग्रहण करते हैं, वे भी निरहङ्कारा हो जाते हैं। इसमें सन्देह नहीं।

***

(१६२) श्रीनिर्मोहा

'मोह' वा वैचित्य अर्थात् अन्धकार (अज्ञान) से रहिता। 'श्रुति' (महोपनिषद्) के अनुसार 'मोह' सात प्रकार का है–१. वीज, २. जाग्रत्-जाग्रत्, ३. महा-जाग्रत् , ४. जाग्रत् , ५. स्वप्न, ६. स्वप्न-स्वप्न और ७. जाग्रत्-सुषुप्ति।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! आप ज्ञानियों को बल से खींचकर महा-माया-जन्य महा-मोह में डालने पर भी स्वयं 'निर्मोहा' हो। अतएव योगी एवं ज्ञानी पहले आपका ध्यान कर ही ब्रह्म-भाव को चुनते हैं क्योंकि आपके ध्यान के बिना ब्रह्म-भाव की प्राप्ति सम्भव नहीं है।

***

(१६३) श्रीमोह-नाशिनी

'मोह' को दूर करनेवाली अर्थात् एकत्व या अद्वैत-भाव का ज्ञान देनेवाली।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! 'मोह-नाशिनी' माता श्रीललिताम्बा का आश्रय ग्रहण करो। वे तुम्हारे मुक्ति-निरोधक अज्ञान को नष्ट कर देंगी और तुम मोक्ष-लक्ष्मी के मधुर मनोहर कटाक्षों के पात्र बन जाओगे।

***

(१६४) श्रीनिर्ममा

ममत्व या ममता-भाव से रहिता।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! मैं तुम्हारा पुत्र हूँ, आप मेरी माँ हो। मेरी आपकी ममता पूर्णतया व्यवहार में आ चुकी है। आप शीघ्र ही कृपा की दृष्टि से मेरी ओर देखिए। माँ मेरे लिए तू 'निर्ममा' मत बनना।

***

(१६५) श्रीममता-हन्त्री

ममता-बुद्धि को हरनेवाली।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! हम जीवों के हृदय में जो यह मेरा-वह मेरा, ऐसी बन्धन की बुद्धि होती है, उसे करुणा-दृष्टि से आप ही मिटाती हो। आपको ममता का हरण करनेवाली समझकर योगी और ज्ञानी लोग जब आपका ध्यान, जप रात-दिन करते हैं, तब उन्हें आपका सायुज्य प्राप्त होता है।

***

(१६६) श्रीनिष्पापा

पाप से रहिता।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! यदि तुम संसार में शान्ति चाहते हो, तो जिसमें किसी प्रकार की पाप की रेखा भी नहीं है, जो पापों को निकालनेवाली हैं, जो निर्मल अन्तःकरणवाली एवं शान्त तथा करुणा की निधि माता श्रीललिताम्बा हैं, उन्हें भजो। उनका भजन-पूजन-सेवन-जप आदि करो, शान्ति-लाभ होगा।

***

(१६७) श्रीपाप-नाशिनी

अपने भक्तों को विद्या-दान करके पाप रहित करनेवाली।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! पापों के नाश के लिए 'पाप-नाशिनी' माता श्रीललिताम्बा का भजन करो, उनके स्मरण मात्र से तुम्हारे पाप दूर हो जाएँगे।

***

(१६८) श्रीनिष्क्रोधा

द्वेष (हिंसा) के अभाव से **निष्क्रोधा-भाव** आता है। **सर्वेश्वरी** को पापी से भी पापी के प्रति द्वेष से–किसी भी कारण-वश क्रोध नहीं रहता–'न मे द्वेष्योऽस्ति, न प्रियः' (गीता)।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! जो भक्त-जन आपको क्रोध-रहित, शुभ्र श्वेत वर्ण और वस्त्रवाली तथा श्वेत पुष्प और मोतियों के आभरणों से शोभित, अक्ष-माला एवं वर धारण किए हुए ध्यान करते हैं, वे धन्य हैं। वे शीघ्र-से-शीघ्र शान्ति को प्राप्त करते हैं।

***

(१६९) श्रीक्रोध-शमिनी

भक्तों के छः अन्तः-शत्रुओं में से क्रोध को शान्त करनेवाली। यह एक गुण-वाचक नाम है।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! क्रोध तमो-गुण का रूप, उग्र-भाव लानेवाला, प्रबल शत्रु है। इस पर आप ही सम्यक् प्रकार से शासन करती हो। आपकी कृपा से हम भी क्रोध का शमन कर सकें, ऐसी शक्ति दीजिए।

***

(१७०) श्रीनिर्लोभा

यह भगवती की अत्यन्त उदारता का द्योतक नाम है। **भगवती** अत्यन्त उदार हैं अर्थात् समस्त विश्व को यथाभिलषित दान ही देनेवाली हैं, किसी से कुछ पाने की इच्छा रखनेवाली नहीं हैं।

◆◆स्तुति◆◆

हे धरा-धरेन्द्र नग-राज हिमालय की पुत्री माता श्रीललिताम्बा! आप सचमुच निर्लोभा हो, तभी तो भाव-मात्र से आपकी तरफ झुकनेवाले दीन-हीनों को राजा-महाराजा बना देती हो और उन्हें उनकी कामनाओं से भी कहीं अधिक सम्पदाएँ देती हो। कोई लोभी जगत् में ऐसा कर ही नहीं सकता। हे ईश्वरि! आपकी महिमा अधिक क्या कहूँ? आपने तो एक बार निज-चरण में प्रणाम करते हुए विष्णु को अपनी स्वयं की कला 'लक्ष्मी' को भी दे डाला। इससे अधिक 'निर्लोभता' का क्या उदाहरण हो सकता है।

***

(१७१) श्रीलोभ-नाशिनी

भक्तों के पाप के मूल 'लोभ' का नाश करनेवाली।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! आपकी भक्ति से सद्-भाव धारण करनेवाले हम भक्त-जनों के लोभों को नष्ट करने के लिए आप जैसी 'लोभ-नाशिनी'-शक्ति दूसरी कोई नहीं है। आपकी कृपा हम पर बनी रहे और हमारा लोभ नष्ट होवे।

***

(१७२) श्रीनिःसंशया

संशय या तर्क-रहिता। तात्पर्य यह है कि इस ब्रह्म-विद्या में संशय या तर्क का स्थान नहीं है, जिसकी पुष्टि 'ब्रह्म-सूत्र'-'तर्काप्रतिष्ठानात्' से होती है। इससे यह बोध होता है कि भगवती तर्क से परे हैं।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! जो आपको 'नेति नेति' अर्थात् 'न इति, न इति'-'यह नहीं, यह नहीं' कहते रहते हैं, उनको ध्यानादि से क्या प्राप्ति होगी, यह संशय ही है। इसके विपरीत जो तृण से ब्रह्म तक 'सेति सेति' अथवा 'सा इति, सा इति'-'वही यह है, वही यह है' यह कहते हैं, उन्हें ध्यानादि से आपकी 'निःसंशया' संवित् की प्राप्ति होती है।

***

(१७३) श्रीसंशयघ्नी

संशय का नाश करनेवाली अर्थात् वह विद्या जिससे व्यक्ति संशयात्मा नहीं रहता। 'श्रुति' और 'स्मृति' दोनों कहती हैं-'छिन्द्यन्ते सर्व-संशयाः।'

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! चैतन्य-मयी, मनोहर एवं सभी संशयों को नष्ट करनेवाली माता श्रीललिताम्बा का ध्यान करो और संसार के विषय में असत् कल्पनाओं से सर्वथा विरत हो जाओ।

***

(१७४) श्रीनिर्भवा

जो उत्पन्न नहीं हुई है। इससे 'अजा' वा 'अजन्मा' का बोध होता है। इसी से भगवती को अनादि कहते हैं (श्रुति)-'अनादि-मत्-परं-ब्रह्म'।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! आप उत्पत्ति-रहित हो और अपने भक्त-जनों को भी जन्म-रहित कर देती हो। आपके भक्त फिर भव में जन्म नहीं पाते।

***

(१७५) श्रीभव-नाशिनी

'भव' अर्थात् संसार का नाश करनेवाली। लक्ष्यार्थ है-संसार के दुःखों का नाश करनेवाली। जिस प्रकार 'काल-नाशिनी' से काल के भय को नाश करने से ही तात्पर्य है, न कि 'काल' ही का नाश करनेवाली से।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! युगान्त-काल में प्रलय के लिए आप काली का रूप धारण करती हुई इस संसार का संहार करती हो। जैसे मकड़ी अपने फैलाए हुए जाल को अपने में ही समेट लेती है। इसीलिए विद्वान् लोग आपको 'भव-नाशिनी' कहते हैं। जो भक्त आपका इस रूप में ध्यान करते हैं, उनके आवागमन को आप मिटा देती हो और वे फिर भव-बन्धन में नहीं पड़ते।

***

(१७६) श्रीनिर्विकल्पा

विकल्प-रहिता। विकल्प को शून्य-विषयक शब्द-जन्य ज्ञान कहते हैं (योग-सूत्र)-'शब्द-मात्रानुपाती वस्तु-शून्यो विकल्पः'। संक्षेप में विकल्प से अयथार्थ धारणा का बोध होता है। अतः 'निर्विकल्पा' वह है, जिसके सम्बन्ध में अयथार्थ धारणा नहीं है। अथवा 'विकल्प' अर्थात् प्रकार जिसमें नहीं है। इससे चरम वृत्ति-रूपिणी है, ऐसा बोध होता है। अथवा 'विरुद्ध कल्प' अर्थात् विरुद्ध पक्ष का जिसमें सर्वथा अभाव है।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! माता श्रीललिताम्बा निर्विकल्पा, विकल्प-रहित शुद्ध संवित् हैं। उनके अतिरिक्त सभी कल्पनाएँ बकवाद होती हैं। अतएव तुम उन्हें ही अपना आश्रय बनाओ। उन्हीं से तुम्हें शुद्ध संवित्-रूपी प्रकाश की प्राप्ति होगी।

***

(१७७) श्रीनिराबाधा

'निर+अबाध', जिसमें बाधा का पूर्ण अभाव है। इससे ब्रह्म की निर्विकल्पिक एक-लिङ्गता सिद्ध होती है।

◆◆स्तुति◆◆

हे बुद्धि की अधिनायिके माता श्रीललिताम्बा! जो भक्त-जन आपकी शरण में आते हैं, वे जगत् में आपका चिन्तन करते हुए, निराबाधा विहार करते हैं। इसमें सन्देह नहीं।

***

(१७८) श्रीनिर्भेदा

जिसमें किसी प्रकार का भेद-भाव न हो। वस्तुतः एक प्रदार्थ अन्योन्य का सर्वत्र अभाव है। सम्बन्ध भिन्न-भिन्न पदार्थ से दो प्रकार का होता है-१. प्रतियोगित्व, २. अनुयोगित्व। यथा-अग्नि में दाहकत्व 'अनुयोगित्व' है और 'प्रतियोगित्व' अग्नि है। यह धर्म और धर्मी का सम्बन्ध है। भगवती में भेद-भाव का पूर्ण अभाव है। इससे इसके सर्व-स्वरूपा होने का बोध होता है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! आप एक ही नित्य हो, चिन्मय रूप से आप सारे संसार में विलास करती हो। जो लोग आप में और शिव में भेद बताते हैं, उनके अनेकानेक जन्म व्यर्थ ही होते हैं।

***

(१७९) श्रीभेद-नाशिनी

भेद का नाश करनेवाली। यहाँ भेद से भक्तों के द्वैत-भाव का तात्पर्य है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! आभ्यन्तर और बाह्य अर्थात् भीतरी और बाहरी दो प्रकार के भेद होते हैं। भक्त-जनों के मन में आरम्भिक काल में जब ये भेद उदित होते हैं, तो उन्हें तत्त्व-बोध देती हुई आप ही निवारण करती हो। इसीलिए आप 'भेद-नाशिनी' कहलाती हो।

***

(१८०) श्रीनिर्नाशा

जिसका नाश नहीं होता। इससे 'नित्या' का बोध होता है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! आप 'निर्नाशा' अर्थात् अविनाशिनी हो। जो भक्त आपको तत्त्व-दृष्टि से विनाश से रहित देखते हैं, उनके सभी विकार नष्ट हो जाते हैं और वे समत्व-भाव को धारण कर आपके सायुज्य को पा लेते हैं।

***

(१८१) श्रीमृत्यु-मथिनी

मृत्यु को दूर करनेवाली। भगवती अपने उपासकों की मृत्यु दूर करती हैं अर्थात् सत्य ज्ञान देकर अमर करनेवाली महा-विद्या हैं। 'मैं अमर हूँ, कारण मैं शिव हूँ'–ऐसा भाव लानेवाली विद्या हैं।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! जो भक्त-जन आपका मृत्युञ्जय महा-देव पर-शिव के हृदय में विराजमान, मृत्यु का मथन करनेवाली समझ कर ध्यान करते हैं, वे संसार में अजर-अमर जैसे होकर विहार करते हैं। इसमें सन्देह नहीं।

***

(१८२) श्रीनिष्क्रिया

विहित और निषिद्ध-रूप दोनों प्रकार की 'क्रिया' से रहिता। इससे निष्क्रिय ब्रह्म का बोध होता है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! आप ब्रह्म-रूप हो। आप में कोई क्रिया अनुष्ठित नहीं होती। प्रकृति-सिद्ध होते हुए भी आप में क्रिया न होने के कारण विद्वान् आपको 'निष्क्रिया' कहते हैं। जो भक्त-जन इस रूप में आपका ध्यान-पूजन करते हैं, वे सभी प्रकार की सांसारिक क्रियाओं के बन्धन से मुक्त हो जाते हैं और आपका सायुज्य प्राप्त करते हैं।

***

(१८३) श्रीनिष्परिग्रहा

जिसमें 'परिग्रह' अर्थात् सञ्चय का भाव न हो।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! किसी भी परिग्रह को न रखनेवाले स्वरूप में आपका जो भक्त-जन श्रेष्ठ भावना से पूजन आदि करते हैं, वे स्वयं तो समृद्धि-संयुक्त-सम्पत्तिशाली होते ही हैं, साथ ही उनके परिग्रह-स्त्री, पुत्र, भाई-बन्धु भी सम्पत्तिशाली होते हैं। आप 'निष्परिग्रहा' की उपासना का यही विचित्र रहस्य है।

***

(१८४) श्रीनिस्तुला

जिसकी 'तुलना' नहीं की जा सकती। इसी से इसे निरुपमेया कहते हैं। समान गुणी से ही तुलना कर अर्थात् गुण मिलाकर उपमा दी जाती है। 'सप्तशती' में भी कहा है–'केनोपमा भवतु तेऽस्य पराक्रमस्य'।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! कवियों ने संसार में जिन-जिन पदार्थों को आपके लिए उपमा में कल्पित किए हैं, वह केवल उनकी प्रतिभा-जनित वाणी की उछल-कूद मात्र है। परमार्थ सत्य में तो हे ईश्वरि! आप 'निस्तुला' अर्थात् तुला-रहित ही हो। संसार में आपका कोई उपमान नहीं है।

***

(१८५) श्रीनील-चिकुरा

नीले केशवाली। केश नील-वर्ण का तो होता नहीं, अतः इसके लक्ष्यार्थ पर ध्यान देना चाहिए। 'चिकुर' का एक अर्थ पर्वत है। इस प्रकार नील-पर्वत-रूपा से अनन्त नील वा मेघ-रहित स्वच्छ आकाश का बोध होता है। यह अनन्त शुद्ध सत्त्व-गुण का द्योतक है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! सुन्दर मुखारविन्द और उस पर नीले (काले) घन-श्यामल केशोंवाली, आपको जो विधि-पूर्वक अन्तर्याग में पूजन करते हैं, वे सर्वोत्कर्ष प्राप्त करते हैं। इसमें सन्देह नहीं।

***

(१८६) श्रीनिरपाया

नाश-रहिता अर्थात् जिसका नाश नहीं होता है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! आप में 'अपाय' अर्थात् विघ्न का नाम-निशान नहीं है। आप 'निरपाया' हो, तो भी आप जिन भक्तों पर अपनी करुणा-मय कटाक्ष करती हो, उनके समस्त अपायों-विघ्नों को आपके पुत्र गणपति और भैरवादि दूर कर देते हैं।

***

(१८७) श्रीनिरत्यया

अतिक्रम-रहिता। अतिक्रमण का अर्थ है—पार पाना। इसी से इसे 'अपारा' कहते हैं। 'सप्तशती' में है—'हरि-हरादिभिरप्यपारा।'

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! आप विनाश और कष्ट से रहित होने से 'निरत्यया' हो, आपका यह 'निरत्यया'-स्वरूप सत्, चित् और आनन्द-रूपिणी बनकर भक्त-जनों का क्या दुष्ट-जनों का भी कल्याण करता है। इसमें सन्देह नहीं।

***

(१८८) श्रीदुर्लभा

जो बड़े कष्ट से प्राप्त हो। इसका ज्ञान योगियों को भी बड़ी कठिनता से होता है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! आपकी कृपा-दृष्टि पाए बिना आपका सानिध्य कोई प्राप्त नहीं कर सकता। इस कारण से आप 'दुर्लभा' कहलाती हो। आपकी कृपा-दृष्टि होने पर हमारे जैसे साधारण भक्त-जन भी आपका सान्निध्य प्राप्त करने में सफल होते हैं। इसमें सन्देह नहीं।

***

(१८९) श्रीदुर्गमा

कठिनाई से जानने योग्य। 'गम्' धातु का प्रयोग ज्ञान के भाव में भी होता है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! आप कठिनाई से ज्ञान में आती हो। जब ब्रह्मादि देव-गण भी आपकी महिमा एवं गुणों को नहीं जानते, तब हे अम्ब! मैं साधारण-सा भक्त आपकी कृपा के कण को पाए बिना आपको कैसे जान सकता हूँ।

***

(१९०) श्रीदुर्गा

दुर्ग अर्थात् कठिन का नाश करनेवाली। अथवा दुर्ग 'किले' को कहते हैं। यह 'किला'—जीव-भाव का है, जिसमें जीव बद्ध है। इसी जीव-भाव या अविद्या का नाश करनेवाली दुर्गा महा-विद्या है। (विशद ज्ञान हेतु 'सप्तशती-तत्त्व' नामक पुस्तकें देखें)

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! आपने प्रसिद्ध दुर्गमासुर को नष्ट करके देव-गणों को सुखी किया। आप अपने शरण में आए भक्तों के दुरितों, पापों, दुःखों को दूर करती हो। इसलिए आप 'दुर्गा' कहलाती हो।

***

(१९१) श्रीदुःख-हन्त्री

दुःख की हरनेवाली। दुःख से ताप का बोध होता है, जो तीन प्रकार के हैं–१. आधि-भौतिक, २. आधि-दैविक और ३. आध्यात्मिक। 'गौतम सूत्र' भी कहता है–'तदत्यन्त-विमोकोऽपवर्गः'।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! आप व्रतों, जपों, पुष्प-अक्षतादि उपचारों से पूजन एवं स्तुति-पाठ से आराधित होने पर, भजन-पूजन करनेवालों के सभी प्रकार के दुःखों का नाश करती हो। इसमें सन्देह नहीं।

***

(१९२) श्रीसुख-प्रदा

सुख देनेवाली। सुख से सांसारिक, पार-लौकिक और परम सुख–तीनों से तात्पर्य है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! आपकी कृपा सबको सदा 'सुख-प्रदा' होती है। विपत्-काल में हम भक्त-जन जब मन के द्वारा आपका स्मरण करते हैं, तब आप शीघ्र ही कृपा कर सुख प्रदान करती हो।

***

(१९३) श्रीदुष्ट-दूरा

दुष्ट का अर्थ है–दोषवाला और दूरा का अर्थ अप्राप्य है अर्थात् जो कुतार्किक हैं, उन्हें भगवती नहीं मिलतीं।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! जिनके कर्मों का परिपाक नहीं हुआ है, वे दुष्टों से दूर रहनेवाली अथवा दुष्ट-जन दूर हैं जिससे ऐसी आप दुष्ट-दूरा को कभी न नमस्कार करते हैं, न यजन ही करते हैं।

***

(१९४) श्रीदुराचार-शमनी

शास्त्र के विरुद्ध आचरण दुराचार है, उसे दबानेवाली। तात्पर्य यह है कि भगवती कर्मों का फल देनेवाली हैं।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! जो भक्त-जन आपको नि:सीम दया-रस से परिपूर्ण और दुराचार को शमन करनेवाले स्वरूप में भक्ति से भजते हैं, वे आपकी कृपा से कु-कर्म और शोक को छोड़कर, प्रसन्न मनवाला होकर, इन्द्रियों का दमन करते हुए, भू-मण्डल में शिव के समान ज्ञान-भाव से पूर्ण होते हैं।

***

(१९५) श्रीदोष-वर्जिता

राग-द्वेषादि दोषों से रहिता।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्रीललितांम्बा! जिन भक्त-जनों के हृदय में आप दोष-वर्जित अर्थात् दोष-रहित प्रकाशित होती हो, उनके मन को रागादि दोष कला-मात्र भी कभी प्रभावित नहीं करते हैं, उनके मन में दोषों की एक रेखा-मात्र भी नहीं आ पाती है।

***

(१९६) श्रीसर्वज्ञा

सब कुछ जाननेवाली। इससे सर्व-व्यापकता का बोध होता है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! आप सब कुछ जाननेवाली हो। आपकी कृपा से जिन भक्त-जनों पर कोमल यमुना की लहरों के समान आपकी कटाक्ष दृष्टि पड़ती है, वे जगत् में सभी प्रकार से गुणी, धन्य, मान्य तथा अग्रगण्य होते हैं।

***

(१९७) श्रीसान्द्र-करुणा

सान्द्र कहते हैं–घन अर्थात् अधिक को। इस प्रकार भगवती अत्यन्त करुणा-मयी हैं।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! लोकों का पालन करने के लिए, देवों को सुखी बनाने के लिए अथवा विशेष दिव्य-भाव दिलाने के लिए तथा भू-मण्डल पर धर्म को समुन्नत करने के लिए एवं भक्ति का पोषण करने के लिए, सिंहासन पर विराजमान आपकी अरुण-वर्णा मूर्ति ही जय पा रही है।

***

(१९८) श्रीसमानाधिक-वर्जिता

भगवती का समानाधिकरण है ही नहीं, इसके समान गुणी अन्य कोई नहीं है। 'श्रुति' भी कहती है कि इसके तुल्य या इससे अधिक (बड़ी) सत्ता नहीं है–'न तत्-समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते।'

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! आपके समान और आप से अधिक कृपावान् चरण-कमल किसी के नहीं हैं, ऐसा जो भक्त-जन मन से नित्य स्मरण करते हैं, वे समता के योग में प्रवीण होकर सुख-दुखादि द्वन्द्वों से परे हो जाते हैं।

***

(१९९) श्रीसर्व-शक्ति-मयी

'भास्कर राय' के अनुसार सर्व-शक्ति से तात्पर्य है–बाला, वगला आदि श्री-क्रम की विद्याओं (शक्तियों) से, परन्तु वस्तुतः इससे परब्रह्म-रूपिणी सर्व-गुण-मयी है, ऐसा बोध होता है। 'श्रुति' (श्वेताश्वतर, ६/८) भी कहती है–'पराऽस्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते'।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! जो भक्त-जन सर्व-शक्ति-मयी अर्थात् समस्त शक्तियों का पुञ्जभूत अथवा जिसमें ब्रह्माण्ड की सभी शक्तियाँ निवास करती हैं, इस रूप में आपको दिन-रात ध्याते हैं; उनके चित्त में सभी प्रकार की शक्तियाँ स्वतः स्फूर्त होती रहती हैं।

***

(२००) श्रीसर्व-मङ्गला

'सर्वाणि मङ्गलानि यस्यां सा' अर्थात् सब प्रकार के मङ्गल अथवा अच्छे गुण जिसमें हों। अथवा सभी हर्षित पदार्थों की देनेवाली। अथवा 'सर्व-प्रकारेण मङ्गलं करोति इति सर्व-मङ्गला' अर्थात् सब प्रकार से मङ्गल या कल्याण करनेवाली।

◆◆स्तुति◆◆

हे सभी मङ्गलों को देनेवाली माता श्रीललिताम्बा! जो भक्त-जन आप 'सर्व-मङ्गला' को ध्याते-भजते हैं, उनकी जहाँ-जहाँ दृष्टि जाती है, वहाँ-वहाँ मङ्गल-ही-मङ्गल होते हैं तथा उनके हाथ, भ्रुकुटी और सिर के इशारे भी मङ्गलकारी हो जाते हैं।

***

(२०१) श्रीसद्-गति-प्रदा

सद्-गति या स्वर्ग से लेकर मोक्षान्त की देनेवाली अर्थात् चारों पदार्थों की देनेवाली। अथवा सद्-गति से 'सतो ब्रह्मणोऽवगतिं ज्ञानं ददाति'–'ब्रह्म-ज्ञान' का तात्पर्य है। इस प्रकार 'ब्रह्म-विद्या' को देनेवाली है, ऐसा बोध होता है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! आप 'सद्-गति-प्रदा' रूप में भक्तों को तो ज्ञान, शक्ति, गति का स्थान, सुख तथा मोक्ष देती ही हो, असुरों को भी मोक्ष देती हो।

***

(२०२) श्रीसर्वेश्वरी

सबकी स्वामिनी। यहाँ 'सर्व' से सब ईश्वरों का तात्पर्य है। ईश्वर सामान्यतः पाँच हैं। 'परमानन्द' ने इनकी संख्या सात तक कही है। अतएव इससे सर्व-श्रेष्ठा 'परमा सत्ता' का बोध होता है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! आपका 'सर्वेश्वरी'-स्वरूप स्वामित्व, शक्तत्व, सामर्थ्य, स्वातन्त्र्य और प्रभुता को देनेवाला है। जो भक्त-जन आपको इस भाव से ध्याते-भजते-पूजते हैं, वे संसार में सभी कुछ प्राप्त करते हैं। इसमें सन्देह नहीं।

***

(२०३) श्रीसर्व-मयी

सर्व-स्वरूपा। इससे भगवती की 'अखण्ड व्यापकता' का बोध होता है। 'श्रुति' भी कहती है–'सर्वं खल्विदं ब्रह्म।'

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! क्षिति आदि से लेकर शिव-पर्यन्त तत्त्वों से अभिन्न होने के कारण आप सर्व-मयी हो। जो भक्त-जन आपके इस जगत्-रूपिणी, सर्व-तत्त्व-मयी स्वरूप का चिन्तन-मनन-पूजन करते हैं, वे फिर जन्म नहीं पाते और आपके सायुज्य को प्राप्त हो जाते हैं।

***

(२०४) श्रीसर्व-मन्त्र-स्वरूपिणी

सर्व-मातृका-रूपा। पचासों मातृकाएँ–अक्षर हैं और अक्षर कहते हैं उसको, जिसका नाश नहीं होता अर्थात् ब्रह्म। अतः इससे 'शब्द-ब्रह्म-स्वरूपिणी' का तात्पर्य है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! स्वर और व्यञ्जन दोनों प्रकार के वर्ण आपके ही रूप हैं। आपके ये दोनों स्वरूप सात करोड़ मन्त्रों को प्रकट करते हैं, जिनसे आपका 'सर्व-मन्त्र-स्वरूपिणी' विलक्षण रूप प्रकट होता है। आपके इस विलक्षण रूप से सम्पूर्ण विश्व का कल्याण होता है। इसमें सन्देह नहीं।

***

(२०५) श्रीसर्व-यन्त्रात्मिका

सब प्रकार के यन्त्र-स्वरूपवाली। 'यन्त्र'-यम् +ऋच् के अनेक अर्थ हैं। अंग्रेजी में 'यन्त्र' को मशीन कहते हैं, किन्तु तन्त्र-शास्त्र में 'यन्त्र'-शब्द का प्रयोग रहस्य या गुप्त भाव से पदार्थ-ज्ञान के द्योतक के रूप में किया जाता है। तन्त्र के 'यन्त्र' कोई 'कल' नहीं, अपितु 'नक्शे' (डायग्राम) हैं, जो तत्तत् पदार्थों की स्थिति सूचित करते हैं। सर्व-स्वरूपा होने से भगवती सर्व-स्थिति-द्योतक सर्व-यन्त्र-स्वरूपा कही गई है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! सभी यन्त्र आपके त्रिकोणात्मक रूप से नाना विधानों से लिखे जाते हैं, जिनसे भक्तों के विविध मनोरथ सफल होते हैं। इस प्रकार आपका 'सर्व-यन्त्रात्मिका'-स्वरूप सभी मनोरथों को सफल करनेवाला है। इसमें सन्देह नहीं।

***

(२०६) श्रीसर्व-तन्त्र-रूपा

जितने भी तन्त्र हैं, सब इसी भगवती के भिन्न-भिन्न (बाह्य रूप से) रूपों का प्रतिपादन करते हैं, कारण इसके अतिरिक्त तो अन्य कोई है ही नहीं क्योंकि यह सर्व-स्वरूपा या विश्व-रूपा है।

'भास्कर राय' ने जो यह व्याख्या की है कि 'तन्त्र' से केवल श्री-क्रम के वामकेश्वर आदि तन्त्रों का ही तात्पर्य है, वह अयुक्त है क्योंकि यही तो काली है, तारा आदि सभी महा-विद्याएँ है। यही नहीं, यही शिव है, विष्णु है, सूर्य और गणपति है। अतः उनके तन्त्र क्या इसी के तन्त्र नहीं हैं ?

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! शिव जी के द्वारा कहे गए चौंसठ तन्त्रों में आपका ही साधन बतलाया गया है। सभी तन्त्र आपके अङ्ग-भूत हैं। जो भक्त आपको इस रूप में जानने का प्रयत्न करते हैं, उनका तन्त्रों पर अधिकार दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही जाता है। इसमें सन्देह नहीं।

***

(२०७) श्रीमनोन्मनी

परमा शक्ति। यह परम पद की द्योतक है। 'श्रुति' (त्रिपुरोपनिषत्) कहती है–

निरस्त - विषया सङ्गः, सन्निरुद्धं मनो हृदि।
यद्वा यात्युन्मनी-भावं, तदा तत् परमं पदम्।।

इससे 'निर्विकल्पा' और 'निरञ्जना' परमा शुद्ध शक्ति-स्वरूपा का बोध होता है। यह 'समनी'-शक्ति से, जो शिव-तनु अर्थात् शक्ति-शिव-द्वय मिश्र रूप है, ऊपर (श्रेष्ठ) की शक्ति है।

'योग-शास्त्र' में 'शाम्भवी-मुद्रा' के सदृश 'उन्मनी' एक मुद्रा की संज्ञा है, जिसके सिद्ध होने से 'प्राण-शक्ति' वहाँ तक पहुँच जाती है और 'असम्प्रज्ञातावस्था' आती है। यह मन की सङ्कल्प-विकल्प से रहित अवस्था है। 'ज्ञान-योग' में ऐसी ही परिभाषा है–'मनांस्युन्मन्यते उत्कृष्ट-ज्ञान-युक्तानि कुरुत।'

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! जब भक्त-जन 'निमेष' अर्थात् पलक बन्द करने और 'उन्मेष' अर्थात् पलक खोलने के स्थान पर आपका उत्कृष्ट मानस मनन से ध्यान करते हैं, तब वे शिव जी की सदा प्रसिद्ध 'मनोन्मनी मुद्रा' को क्रमशः प्राप्त करने लगते हैं और उन्हें शिव जी की भाँति आपके 'मनोन्मनी'-स्वरूप की अनुभूति होने लगती है, जो मन को उत्कृष्ट-से-उत्कृष्ट मनन कराती है।

***

(२०८) श्रीमाहेश्वरी

महा ईश्वर की शक्ति। 'लिङ्ग-पुराण' के मत से निर्गुण ईश्वर वा ब्रह्म ही महेश्वर है–'सत्वेन सर्वगो विष्णुर्नैगुण्येन महेश्वरः।' इससे महा-शक्ति ब्रह्म का बोध होता है।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! त्रिगुणातीत शिव को महेश्वर कहते हैं और उन महेश्वर के भी ऊर्ध्व-भाग हृदय में रहनेवाली परमा शक्ति को माहेश्वरी माता श्रीललितांम्बा कहते हैं। उन्हें ध्याओ, उन्हें भजो और ऐश्वर्य के साथ-साथ उच्चतम माहेश्वरी विभूति को प्राप्त हो जाओ।

***

(२०९) श्रीमहा-देवी

महा-देव (शिव) की पत्नी (शक्ति)। 'महा'-शब्द महत्त्व-वाचक है। महत्त्व प्रमाण-गम्य नहीं है, अतः अप्रमेय-वाचक है अर्थात् बड़प्पन की तुलना नहीं है। इससे ब्रह्म के विराट् रूप का बोध होता है।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! महा-देवी माता श्रीललितांम्बा के चरण-कमलों का नित्य ध्यान, पूजन करो, जिससे विराट् रूप में चिर-काल तक स्थिति बनी रहे और आनन्द की वर्षा की अनुभूति सदा होती रहे।

***

(२१०) श्रीमहा-लक्ष्मी

त्रिगुणा आद्या-शक्ति। 'तन्त्र' में लिखा है-

महाल-नामकं दैत्यं, स्यति क्षपयतीति च।
महालसा महा-लक्ष्मीरिति च ख्यातिमागता।।

अर्थात् महाल नाम के दैत्य को मारने से भगवती का नाम महालसा वा महा-लक्ष्मी हुआ।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता महा - लक्ष्मी श्रीललितांम्बा! जो भक्त - जन वक (श), भुजङ्ग (र), औषधि-नाथ चन्द्र-कला (अनुस्वार) और नमः पद के साथ धारण होनेवाले 'नृसिंह' (इ-कार) अर्थात् अत्यन्त महिमा-मय 'श्रीं'-एकाक्षर-मन्त्र को जपते हुए आपको ध्याते हैं, वे अतिशय धन-धान्य से युक्त हो जाते हैं।

***

(२११) श्रीमृड-प्रिया

शिव-प्रिया या शिव-वल्लभा। 'मृड' का अर्थ है सुख देनेवाला-'मृड् सुखने।' सत्त्व-गुणवान् शिव जगत् को सुख देनेवाला है, इसी से इसका नाम मृड है (महिम्न स्तोत्र)-'जन-सुख-कृते सत्वोद्रिक्तौ मृडाय नमो नमः।'

◆◆स्तुति◆◆

हे मृड अर्थात् महा-देव की प्रिया माता श्रीललितांम्बा! आपके पद-कमलों का सेवन करते हुए सभी संसार में सुख प्राप्त करते हैं। चन्द्रमा की शीतलता से जैसे सभी तृप्ति का अनुभव करते हैं, वैसे सभी आपके द्वारा तृप्त होते हैं।

***

(२१२) श्रीमहा-रूपा

विराट्-रूपा। इससे सबसे बड़े 'ब्रह्म-रूप' का बोध होता है। 'श्रुति' भी कहती है–

'महतो महीयान् ।'

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! परमात्मा के चारों रूप (१. प्रधान, २. पुरुष, ३. व्यक्त और ४. अव्यक्त) तथा संसार के चारों रूप (१. सौन्दर्य, २. लावण्य, ३. सौष्ठव और ४. रुचि) इन दोनों प्रकार के रूप-चतुष्टय से अधिकाधिक उल्लासवाले, महत् लावण्य के निधान और सुधाकर (चन्द्र) का विधान करनेवाले आपके 'महा-रूप' को जो भक्त चित्त में भावित करते हैं, वे लक्ष्मी के वल्लभ होते हैं। इसमें सन्देह नहीं।

***

(२१३) श्रीमहा-पूज्या

सर्वाधिक पूज्या। अथवा शिवादि ईश्वरों की भी पूज्या भगवती हैं।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! सबसे बड़ी होने के कारण तथा हरि-हरादि देवों के परम पूजनीय होने से महा-पूज्या माता श्रीललिताम्बा का भजन करो। उनके भजन से जगत् में कहीं भी तुम्हारा परिभव, अनादर, पराजय, तिरस्कार नहीं होगा।

***

(२१४) श्रीमहा-पातक-नाशिनी

स्मृति और अन्य शास्त्रों में कथित ब्रह्म-हत्या, गो-हत्या, स्त्री-हत्या इत्यादि महा-पातकों की भी नाश करनेवाली। 'रत्नावली' के अनुसार 'वीर-हत्या' ही 'महा-पातक' है–'महा-पातक-शब्देन, वीर-हत्यैव कथ्यते।' 'तन्त्र-शास्त्र' के अनुसार वीर-हत्या, स्त्री-हत्या, पूज्या शक्ति का अपमान आदि ही महा-पातक हैं।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! माता श्रीललिताम्बा महा-पातक-नाशिनी हैं। उनकी कृपा को प्राप्त करो और अपने महा-पातकों को नष्ट कर अग्नि के समान पावक बन जाओ।

***

(२१५) श्रीमहा-माया

ब्रह्मादि ईश्वरों को भी मोह में रखनेवाली। इससे पराम्बा की महा-लीला (क्रीड़ा व खेल करनेवाली) शक्ति का बोध होता है।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! माता श्रीललिताम्बा ब्रह्मा-विष्णु-महेशादि को एक ओर प्रकट करती हैं और दूसरी ओर उन्हें मोह में डालती हैं। अतएव तुम उन्हें सावधान-पूर्वक ध्याओ-भजो और मोह आदि से अपने को बचाओ।

***

(२१६) श्रीमहा-सत्त्वा

महा-बलवती। 'सत्त्व' अर्थात् बल। 'महा-सत्त्व' उस महान् बल से तात्पर्य है, जिससे समस्त विश्व का निर्वाह होता है।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! सत्त्व-रूपी बल, सामर्थ्य से पूरित महा-सत्त्वा माता श्रीललिताम्बा का नित्य गुण-गान करो तथा जगत् में असम्भव-से-असम्भव, लोक-कल्याण-मय कर्मों को सम्पन्न करो।

***

(२१७) श्रीमहा-शक्ति

धर्मी शक्ति, जिसमें सभी प्रकार की शक्ति या गुण हैं। इससे व्यष्टि-भाव में '**प्राण-शक्ति**' अथवा '**कुण्डलिनी**' से तात्पर्य है।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! महान्, महती, विविध प्रकारों से प्रशंसनीय, पूज्या, महा-शक्ति माता श्रीललिताम्बा का भक्ति-पूर्वक पूजन करो और अपने सभी अभीष्ट को पूर्ण करो। अथवा आत्म-महा-शक्ति कुण्डलिनी को जाग्रत कर सभी सिद्धियों को प्राप्त करो।

***

(२१८) श्रीमहा-रति

जिसमें ज्ञानियों की अत्यधिक मात्रा में प्रीति है–

'महती रतिर्विषय-रतिभ्यो अधिका प्रीतिर्ज्ञानिनां यस्यां सा।'

अथवा परम शिव के सङ्ग जिसकी महती अर्थात् सर्व-श्रेष्ठ रति या सामरस्य होती है। इससे 'महा-काम-सुन्दरी' का बोध होता है।

◆◆प्रार्थना◆◆

विषय-भोगादि की रति-प्रीतियों से उत्कृष्ट, चिर-काल तक स्थिर रहनेवाली, अति मञ्जुल, जिसमें ज्ञानियों की प्रीति उदित होती है, वे महा-रति-रूपिणी श्रीललिताम्बा मेरे श्री के लिए होवें अर्थात् मुझे श्री प्रदान करें।

***

(२१९) श्रीमहा-भोगा (श्रीमहाभोगा)

महा+आभोगा=जिसका महान् आभोग अर्थात् विस्तार है। इससे '**अनन्ता**' का बोध होता है। अथवा **महा+भोग=**महा-भोग। 'भोग' का अर्थ सुख या धन है। इससे '**महा-सुखी**' या '**महा-धनी**' का तात्पर्य है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! आपके विस्तृत भोग, सुख, धनवाले महा-भोगा स्वरूप के चरण-कमल को जो भक्त पूजते हैं , वे जगत् में नाना प्रकार के भोगों को भोगते हैं।

***

(२२०) श्रीमहैश्वर्या

बहुत बड़ी विभूति वा ईश्वरतावाली। इससे छहों प्रकार के ऐश्वर्यवाली का बोध होता है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! मणि-द्वीप में आपका निवास है। ब्रह्मा, विष्णु और शिव आपकी सेवा में संलग्न हैं। लक्ष्मी और सरस्वती आपकी सहेलियाँ हैं और महा-महेश्वर कामेश्वर शिव आपके सहचर हैं। असंख्य ब्रह्माण्डों पर आपकी अधिकाधिक प्रभुता सर्वोत्कर्ष पा रही है। आपके इस महान् ऐश्वर्य का वर्णन हम कैसे करें! हे माँ! आप ही बतलाने की कृपा करें।

***

(२२१) श्रीमहा-वीर्या

'**वीर्य**' का तात्पर्य है तेज से अर्थात् महा-तेजस्विनी।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! जिसके वीर्य (तेज, पराक्रम) को सुनकर और देखकर संग्राम में शुम्भ-निशुम्भादि दानव तथा चण्ड-मुण्ड-भण्डादि दैत्य और महिषादि असुर सदल-बल रण में ठहर नहीं सके और जो अनेकों बार ब्रह्मा-विष्णु-शिव आदि देव-गणों से प्रशंसित हुआ है, उन महा-वीर्या भगवती परा अम्बिका श्रीललिता को अभय-प्राप्ति के लिए हृदय में नित्य ध्याओ, पूजो।

***

(२२२) श्रीमहा-बला

'**बल**' से यहाँ तात्पर्य है गन्ध, रस, रूपादि से (विश्व-कोष)–

बलं गन्धे रसे रूपे, स्थामनिस्थौल-सेनयोः।
हलो हलायुधे दैत्य-भैदे बलि-निवायसः।।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! जिसके महान् और अतुल बल के एक अंश का भी वर्णन करने अथवा सोचने या ध्यान में लाने में सभी सुरासुर समर्थ नहीं हैं, उन भगवती महा-बला माता श्रीललिताम्बा से नित्य रक्षा करने की प्रार्थना करते रहो और निश्चिन्त रहो।

***

(२२३) श्रीमहा-बुद्धि

असाधारण बुद्धिवाली, जिससे ज्ञातव्य निःशेष होता है। इससे पूर्ण ज्ञान का बोध होता है। 'श्रुति' कहती है–'यस्मिन् विज्ञाने सर्वमिदं विज्ञातं स्यात् ।'

अथवा महती वा सर्व-श्रेष्ठ बुद्धि की देनेवाली को 'महा-बुद्धि' कहते हैं (गीता, १०।१०)–

तेषां सतत-युक्तानां, भजतां प्रीति-पूर्वकम्।
ददामि बुद्धि-योगं तं, येन मामुपयान्ति ते।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! जिस बुद्धि के उदित होने पर कोई भी ज्ञातव्य शेष नहीं रहता, उस महा-बुद्धि को प्रदान करनेवाली माता श्रीललिताम्बा को अपने हृदय-रूपी विन्दु-चक्र में ध्याओ और जानने योग्य सभी बातों को जान लो।

***

(२२४) श्रीमहा-सिद्धि

महती सिद्धि अर्थात् बड़ी साधना की सिद्धि वा प्राप्ति। ब्रह्म-रूपिणी भगवती की साधना से बड़ी कोई साधना नहीं है। इस प्रकार भगवती के पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति को 'महा-सिद्धि' कहते हैं। अथवा अणिमादि आठ सिद्धियाँ हैं। इनसे बड़ी 'ब्रह्म-विद्या' की सिद्धि है। यद्यपि 'योग-दर्शन' के अनुसार अष्ट सिद्धियाँ ही महा-सिद्धियाँ हैं, तथापि निरपेक्ष भाव से विचार करने से 'ब्रह्म-विद्या' की सिद्धि वा प्राप्ति ही सर्व-श्रेष्ठ सिद्धि प्रमाणित होती है।

'स्कन्द-पुराण' भी आठ सिद्धियों का प्रतिपादन करता है–

रसानां स्वतः उल्लासः, प्रथमा सिद्धिरीरिता।
द्वन्द्वैरनभिभूतिश्च, द्वितीया सिद्धिरुच्यते।
अधमोत्तमता - भावस्तृतीया सिद्धिरुत्तमा।
चतुर्थी तुल्यता तेषामायुषः सुख - दुःखयोः।
कान्तेर्बलस्यं बाहुल्य - विशोका नाम पञ्चमी।
परमात्म - परत्वेन, तपो - ध्यानादि - निष्ठता।
षष्ठी निष्काम-चारित्वं, सप्तमी सिद्धिरुच्यते।
अष्टमी च तथा प्रोक्ता, यत्र क्वचन शायितेति।।

अर्थात् पहली सिद्धि–रसों का स्वाभाविक उल्लास, दूसरी सिद्धि–द्वन्द्व (द्वैत) भाव से परे, तीसरी सिद्धि–नीच-ऊँच का भाव, चौथी सिद्धि–उपासकों की आयु के सुख और दुःखों की समता, पाँचवीं सिद्धि–कान्ति और बल की अधिकता, छठवीं सिद्धि–'विशोका' अर्थात् परमात्मा पर निर्भर होकर तपस्या और ध्यानादि में रहना, सातवीं सिद्धि–अपनी इच्छा से चलना और आठवीं सिद्धि–जहाँ कहीं भी सोना (रहना)।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! यदि तुम बड़े-से-बड़े महानुभावों द्वारा सम्मानित होना चाहते हो, तो माता श्रीललिताम्बा को महा-सिद्धि-स्वरूपा के रूप में स्मरण और यजन-पूजन करो।

***

(२२५) श्रीमहा-योगेश्वरेश्वरी

महा-योगेश्वर कृष्ण हैं, उनकी ईश्वरी अर्थात् स्वामिनी। अथवा बड़े-बड़े योगियों की स्वामिनी।

◆◆स्तुति◆◆

हे योगीश्वरों की भी ईश्वरी माता श्रीललिताम्बा! आपके मन्त्र को जो भक्त-जन श्रद्धा-पूर्वक नित्य सतत जपते हैं, वे सूक्ष्म गतिवाले सिद्ध यति-श्रेष्ठ बन जाते हैं। इसमें सन्देह नहीं।

***

(२२६) श्रीमहा-तन्त्रा

श्रेष्ठ तन्त्र-प्रतिपादिता 'महा-विद्या'। तन्त्र तो असंख्य हैं, जिनमें असंख्य देवताओं और उप-देवताओं का प्रतिपादन है। सर्व-श्रेष्ठा भगवती का सर्व-श्रेष्ठ तन्त्र होना स्वाभाविक है। यह महा-तन्त्र 'स्वतन्त्र-तन्त्र' है, जिसका उल्लेख 'आनन्द-लहरी' के ३१वें पद्य में पूज्यपाद शङ्कर ने किया है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! आपके बड़े-बड़े तन्त्र हैं। आपके तन्त्रों से भक्त-जन सुख से यश और सम्पदाएँ प्राप्त करते हैं। आपके महान् तन्त्र को भगवान् शङ्कर ने सभी प्रकार के भक्त-जनों के उद्धार के लिए प्रकट किया है।

***

(२२७) श्रीमहा-मन्त्रा

महा-मन्त्र-स्वरूपा। प्रत्येक देवता के सदृश ललिता भगवती के भी असंख्य मन्त्र हैं। महा-मन्त्र पञ्च-दशी विद्या भी है और षोडशाक्षरी विद्या भी। महत्ता मन्त्र (शब्द) पर नहीं, वरन् अर्थ पर ही निर्भर करती है। अर्थ भी एक प्रकार का नहीं होता। एक ही मन्त्र का अर्थ स्थूल भी है, सूक्ष्म भी और पर भी। इसकी उपयोगिता साधक की योग्यता पर निर्भर करती है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! आप एक अक्षर से हजार वर्ण तक के बड़े-बड़े महान् मन्त्रों के प्रकाश से प्रकाशित हो। जो भक्त-जन आपके वर्ण-प्रकाश को सर्व-वर-दायिनी समझकर, आपको अपने हृदय-कमल में ध्यान करते हुए जपादि करते हैं, उनको सभी मनोभिलाष के साथ-साथ शाश्वत सुख अर्थात् मोक्ष भी देती हो। इसमें सन्देह नहीं।

***

(२२८) श्रीमहा-यन्त्रा

महा अर्थात् श्रेष्ठ यन्त्र अर्थात् चक्र-द्योतिता (रहस्य-भाव से बतलाई गई)। इससे 'श्री-चक्र' का, जिसे 'चक्र-राज' या 'यन्त्र-राज' कहते हैं, तात्पर्य है। 'भास्कर-राय' के मत से सिद्धि-वज्राख्य यन्त्र का ही इससे बोध होता है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! चमकता हुआ जगत् आपका महा-यन्त्र है और ऐसे महा-यन्त्र रूप में जो भक्त-जन आपका ध्यान-पूजन करते हैं, वे पञ्च-तत्त्वों पर अधिकार करते हुए संसार से मुक्त होकर आपका सान्निध्य प्राप्त करते हैं।

***

(२२९) श्रीमहाऽऽसना

महा आसनवाली। इससे 'ब्रह्मादि पञ्चेश्वर' के महा-आसन का बोध होता है और कुछ हेर-फेर करके दूसरे शब्दों में पृथ्वी आदि ३६ तत्त्वों के आसन का बोध होता है। 'देवी-भागवत' कहता है–'एषा भगवती सर्व-तत्त्वान्याश्रित्य तिष्ठति' अर्थात् यह भगवती सब तत्त्वों पर बैठी है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! विश्व के प्रवर्तक छत्तीस तत्त्व आपके आसन हैं और ऐसे महाऽऽसना-रूप में जो भक्त-जन आपको ध्याते हैं, वे सभी तत्त्वों का शोधन करते हुए साक्षात् शिवत्व को प्राप्त करते हैं, इसमें सन्देह नहीं।

***

(२३०) श्रीमहा-याग-क्रमाराध्या

महा-पूजा के क्रम अर्थात् परिपाटी से आराधना की योग्या। शास्त्रों का निर्णय है कि ब्राह्मी आदि की अंश-भूता अक्षोभ्या आदि चौंसठ योगिनियों की पूजा अर्थात् नवों आवरण-सहित पूजा ही 'महा-पूजा' या 'महा-याग' है। अथवा 'भावनोपनिषद्' में प्रतिपादित रहस्य-तर पूजा 'महा-याग' है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! महा-याग-क्रम (ब्राह्मी आदि मातृकाओं से अक्षोभ्यादि योगिनी-पर्यन्त पूजा) से आपको जो विधान के साथ पूजते-भजते हैं, वे जगत् में गणनीय, महनीय, धन्य तथा उदार विद्वानों में अग्रणी होते हैं। इसमें सन्देह नहीं ।

***

(२३१) श्रीमहा-भैरव-पूजिता

सबसे बड़े भैरव द्वारा पूजिता। 'भैरव' से सामान्यतः शिव के एक तान्त्रिक रूप से तात्पर्य लिया जाता है। 'भैरव' की अनेक परिभाषाएँ हैं। 'भास्कर राय' के अनुसार 'भरण-रमण-वमन-कर्ता' अर्थात् सृष्टि, स्थिति (पालन), संहृत्तिकारी होने से पर-शिव भैरव कहे गए हैं।

दूसरी परिभाषा है–'अनर्थिकस्य अज्ञानस्य भीषणात् अस्ति भाति प्रिय-रूपाखण्डाकार-वृत्ति-रक्षणात् स्व-स्वरूप-ज्ञापक-रूप-मोक्ष-वमनात् भैरवः' अर्थात् मिथ्या अज्ञान को डराने से, ब्रह्म की अस्ति, भाति, प्रिय, रूप और अखण्डाकार-वृत्ति की रक्षा करने से तथा अपने स्वरूप को समझानेवाले रूप से मोक्ष का प्रकाश करने से 'भैरव' नाम है। सारांश में 'भै' से भीषण से रक्षण, 'र' से 'रमण' और 'व' से वमन का बोध होता है।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! सृष्टि-स्थिति-संहारकारी पर-शिव महा-भैरव से पूजित, देवों की ईश्वरी माता श्रीललिताम्बा को नमस्कार करो और संसार में भैरव होकर विचरण करो।

***

(२३२) श्रीमहेश्वर-महा-कल्प-महा-ताण्डव-साक्षिणी

'महा-कल्प' अर्थात् महा-प्रलय के समय शिव के 'महा-ताण्डव' नृत्य को देखनेवाली। यह महा-ताण्डव नृत्य–विश्वोपसंहार अर्थात् अविद्योपसंहार-जन्य 'समष्टि-महदानन्द' का द्योतक है।

यह समझना महान् भ्रम है कि महेश्वर या महा-देव ऐसे निर्दय हैं कि विश्व का नाश करने में उन्हें आनन्द होता है। यह व्यष्टि-भाव में भी होता है, जब कि जीव की सब वृत्तियाँ अन्तर्मुखी होती हैं और जब जीव में विश्व-भाव अर्थात् इदन्ता-भाव का लय हो जाता है। इसका प्रतिपादन 'योग-वाशिष्ठ' के निर्वाण-प्रकरण के उत्तरार्ध के ८१ वें सर्ग में किया गया है।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! प्रलय-काल में महेश्वर के महा-ताण्डव नृत्य को साक्षी रूप से देखनेवाली महा-भगवती माता श्रीललिताम्बा का आश्रय ग्रहण करो और सैकड़ों भयों में भी अभय को प्राप्त करते हुए किसी से भी मत डरो।

***

(२३३) श्रीमहा-कामेश-महिषी

'महा-कामेश' के अनेक तात्पर्य हैं। 'काम' अर्थात् अपर-काम या अपर-वासना के 'ईश' या स्वामी मदन हैं और पर-काम या परा-वासना के स्वामी पर-शिव हैं। उनकी 'महिषी' या सह-धर्मिणी।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! महा-कामेश पर-शिव की पट्ट-राज्ञी माता श्रीललिताम्बा का ध्यान करो और सभी कार्यों को पूरा करते हुए, सायुज्य मुक्ति तक सुरक्षा प्राप्त करो।

***

(२३४) श्रीमहा-त्रिपुर-सुन्दरी

'महा' अर्थात् सर्व-श्रेष्ठा, 'त्रिपुर' अर्थात् प्रमातृ, प्रमाण और प्रमेय–इन तीनों के 'पुर' या नगर या भाव को अपने ज्ञान से सुन्दर करनेवाली अर्थात् विभीषिका को हटानेवाली।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! यदि तुम भू-तल पर अतुल विभव, शास्त्रों का ज्ञान, शुभ्र उज्ज्वल यश पाना चाहते हो तथा संसार का आदि कारण भी जानना चाहते हो, तो देवों की अधिनायिका महा-त्रिपुर-सुन्दरी पराम्बा माता श्रीललिता का आश्रय ग्रहण करो।

***

(२३५) श्रीचतुःषष्ट्युपचाराढ्या

चौंसठ उपचारों से भगवती की महती पूजा होती है। इन उपचारों के नाम भगवान् परशुराम ने अपने 'कल्प-सूत्र' में दिए हैं। 'तन्त्रान्तर' में भी इनका उल्लेख है।

सामान्यतः 'उपचार' से बाह्य क्रियाओं यथा गन्ध-पुष्पादि समर्पण का बोध होता है, किन्तु 'उप समीपे चारः सञ्चारः' का यथार्थ अर्थ है भावनिक क्रिया।

'श्रुति' (भावनोपनिषद्) भी कहती है–'भावनायाः क्रिया उपचारः।'

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! आवाहन, आसनादि चौंसठ उपचारों की अर्चना के द्वारा जो भक्त-जन आपकी आराधना करते हैं, वे देव-वृन्द की कृपा को सदैव प्राप्त करते रहते हैं। इसमें सन्देह नहीं।

***

(२३६) श्रीचतुष्षष्टि-कला-मयी

चौंसठ कलावाली। 'कला'-शब्द से लेखन, वाचन, चित्र-कला इत्यादि जितनी भी विद्याएँ हैं, उनका तात्पर्य है। 'कला' का एक तात्पर्य 'तन्त्र' से भी है। इन चौंसठ तन्त्रों के नाम 'वामकेश्वर

तन्त्र' में दिए हैं। इसके अनुसार ६४ तन्त्रों से प्रतिपादित महा-विद्या का बोध होता है। 'चतुःषष्टि' का उल्लेख 'आनन्द-लहरी' के ३१ वें पद्य में भी है। फिर 'कला' से गुण या शक्ति का भी तात्पर्य है, यथा–प्रणव-कला, सूर्य-कला, नाद-कला इत्यादि।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! चौंसठ कलाएँ आपके ही रूप हैं। चौंसठ कलाओं में आप निवास करती हो। आपको भक्त-जन किसी भी कला से भजें, आप उसी से सन्तुष्ट होकर उसे वर और अभय देती हो तथा उसके पास पहुँच जाती हो।

***

(२३७) श्रीमहा-चतुःषष्टि-कोटि-योगिनी-गण-सेविता

चतुःषष्टि योगिनियों से तात्पर्य है ब्राह्मी आदि ८ योगिनियों में से प्रत्येक के अंश से उत्पन्न अक्षोभ्या आदि शक्तियों का, जो गुणा करने से ६४ होती हैं। इन ६४ योगिनियों या धर्म-शक्तियों के प्रातिस्विक अंश कोटि के हिसाब से हैं अर्थात् असंख्य हैं। ये भगवती ललिता के श्रीचक्र-स्थित नव चक्रों में हैं अर्थात् नवावरण-देवता के प्रभेद हैं। 'तन्त्र-राज' में कहा है–

'ललिता-नव-चक्रे प्रत्येकं शक्तयः प्रिये ! चतुःषष्टि-मिताः कोटयः।'

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! ब्राह्मी आदि अष्ट-मातृकाओं की अंशीभूत ८x८=६४ योगिनियों के गणों (चौंसठ करोड़) से सेवित आपका जो भक्त-जन ध्यान करते हैं, उनके सभी प्रयोगादि सिद्ध होते हैं। इसमें सन्देह नहीं।

***

(२३८) श्रीमनु-विद्या

(२३९) श्रीचन्द्र-विद्या

श्रीश्रीविद्या के १५ प्रस्तार हैं, जिनके नाम हैं–१. मनु, २. चन्द्र ३ कुबेर, ४. लोपामुद्रा, ५. मन्मथ, ६. अगस्त्य, ७. अग्नि, ८. सूर्य, ९. स्कन्द, १०. शिव, ११. क्रोध-भट्टारक, १२. शक्र, १३. यम, १४. नन्दिकेश्वर और १५. विरञ्चि। इन १५ मन्त्रों को क्रमशः जप कर मनु आदि ने सिद्धि प्राप्त की थी। इसी प्रकार अन्य महा-विद्याओं के भी मन्त्र हैं। उक्त मन्त्रों के उद्धार 'मन्त्र-कोष' में दिए हैं।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! मनु-विद्या-स्वरूपिणी माता श्रीललिताम्बा का पूजन करते हुए जपादि करो और संसार में सुख-समृद्धि के साथ-साथ जन्मान्तर में बड़े मन्वन्तर के अधिपति बनो।

हे मन! माता श्रीललिताम्बा के चन्द्र-विद्या-मन्त्र को पाकर सायं-काल सन्ध्या-वन्दन करते समय जपो और पूर्ण आयु के साथ-साथ अनेक प्रकार से कल्याण को प्राप्त करो।

***

(२४०) श्रीचन्द्र-मण्डल-मध्यगा

कुण्डली-शक्ति, जो देह-स्थित 'चन्द्र-मण्डल' को भेद कर ही सहस्त्रार-स्थित ब्रह्म-रन्ध्र में पहुँचती है। अथवा सन्ध्या-कालिक उपासना में आयु-वर्द्धक प्रयोग में चन्द्र-मण्डल में ध्यान किए जाने से ही भगवती का यह नाम है। रहस्य तात्पर्य इसका 'श्री-चक्र' से है क्योंकि श्री-चक्र-अग्नि, सूर्य और चन्द्रात्मक है। 'श्री-चक्र' का विन्दु चित्-चन्द्रात्मक है। इसके मन्त्र भी सोम-सूर्यानलात्मक हैं।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! चन्द्र-मण्डल के मध्य में आपका ध्यान करते हुए, अपनी कुण्डलिनी शक्ति को सहस्त्रार के कर्णिका-रूप चन्द्र-मण्डल में लगाकर जो आपका मन्त्र जपते हैं, वे चिरञ्जीव रहते हुए जय को प्राप्त करते हैं। इसमें सन्देह नही।

***

(२४१) श्रीचारु-रूपा

सुन्दर रूपवाली। जब इसके ज्ञान से ही विश्व के सारे पदार्थ बाह्य दृष्टि से कुत्सित-से-कुत्सित क्यों न हों, सुन्दर दीखने लगते हैं, तो वह स्वयं कितनी सुन्दरी है, यह अकथनीय है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! आपको चारु-रूप में स्मरण करते हुए, जो भक्त-जन कलात्मक 'क'-कार, 'ल'-कार को वाम-लोचन 'ई'-कार तथा 'विन्दु-अनुस्वार' से संयुक्त कर आपके बीज-मन्त्र को जपते हैं, वे शीघ्र ही सभी के मन को मथनेवाले होते हैं।

***

(२४२) श्रीचारु-हासा

सुन्दर हास्य करनेवाली अर्थात् आनन्द-स्वरूपा।

◆◆प्रार्थना◆◆

सत् और चित् विलासवाली, मृदुल सुन्दर हासवाली, शुचि उज्ज्वल प्रकाशवाली, दुरित (पाप) दूर करनेवाली, अभय-सहित अंकुश-पाशवाली माता श्रीललिताम्बा मुझमें वास करे।

***

(२४३) श्रीचारु-चन्द्र-कला-धरा

'चन्द्र-कला' का रहस्यात्मक तात्पर्य है उस कला से, जिसे १७ वीं 'सादाख्य'-कला कहते हैं।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! महेश्वर के सिर में स्थित चन्द्रमा की कला को धारण करनेवाली माता श्रीललिताम्बा का आश्रय ग्रहण करो और उज्ज्वल-से-उज्ज्वल बनो।

***

(२४४) श्रीचराचर-जगन्नाथा

चराचर जगत् की स्वामिनी। स्थूल भाव में 'चर' से चलनेवाले वा जङ्गम का और 'अचर' से न चलनेवाले वा स्थावर का बोध होता है, किन्तु रहस्य-भाव में 'चर' से अचित् का और 'अचर' से चित् का बोध होता है। इस प्रकार भगवती चिदचित् पदार्थ-द्वय की स्वामिनी है।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! चर और अचर दोनों प्रकार के जगत् की स्वामिनी माता श्रीललिताम्बा का आश्रय ग्रहण करो और जगत् की सभी बाधाओं को पार कर अविनाशी ऐश्वर्य को प्राप्त करो।

***

(२४५) श्रीचक्र-राज-निकेतना

'चक्र-राज' अर्थात् श्री-चक्र में समष्टि और व्यष्टि दोनों रूपों से रहनेवाली। तात्पर्य यह कि नौ चक्रों से बना चक्र-राज–पर-ब्रह्म वा परमात्मा का देह है, साथ ही जीवात्मा का भी देह है। 'श्रुति' कहती है– 'तेन नव-रन्ध्र-रूपो देहः।' नव-रन्ध्र के ज्ञान हेतु 'भावनोपनिषत्' की भास्करी व्याख्या देखें।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! पावन भक्ति-भाव से नव-चक्रों में निवास करनेवाली अभीष्ट वर-दायिनी माता श्रीललिताम्बा का ध्यान-पूजन करो और गुणवानों में श्रेष्ठ-से-श्रेष्ठ बनो।

***

(२४६) श्रीपार्वती

पर्वत अर्थात् हिमालय की पुत्री उमा। उमा–ब्रह्म-द्योतक हैं। देखिए 'ब्रह्म-सूत्र' के शक्ति-भाष्य का उमाऽधिकरण। 'उमा'-शब्द प्रणव-वाचक है।

◆◆प्रार्थना◆◆

हे मन! पार्वती माता श्रीललिताम्बा के चरण-कमलों का नित्य स्मरण करो और भोगवान् भाग्य के साथ-साथ शुद्ध व विराट् स्वरूपवाले बनो।

***

(२४७) श्रीपद्म-नयना

कमल-नयन से ईषत् रक्त (गुलाबी) आँखों का बोध होता है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! ब्राह्मी आदि अष्ट-मातृकाओं की अंशीभूत ८x८=६४ योगिनियों के गणों (चौंसठ करोड़) से सेवित आपको जो भक्त-जन ध्यान करते हैं, उनके सभी प्रयोगादि सिद्ध होते हैं। इसमें सन्देह नहीं।

***

(२४८) श्रीपद्म-राग-सम-प्रभा

पद्म-राग नाम की एक लाल रङ्ग की मणि होती है, उसके समान कान्ति-वाली।

◆◆स्तुति◆◆

हे भुवनों के ईश्वरों की ईश्वरी माता श्रीललिताम्बा! आपकी पद्म-राग-मणि के समान लाल कान्तिवाली मूर्ति को जो भक्त-जन ध्याते हैं और उसके तेज के पुञ्ज से आकाश और भू-मण्डल को व्याप्त देखते हुए, आपके काम-बीज को अनुस्वार-युक्त कर जपते हैं, वे सभी के द्वारा पूजनीय होते हैं।

***

(२४९) श्रीपञ्च-प्रेतासनासीना

भगवती पाँच प्रेतों के आसन पर बैठी है। पाँच प्रेत हैं–१. ब्रह्मा, २. विष्णु, ३. रुद्र, ४. ईश्वर और ५. सदा-शिव। ये क्रमशः पृथ्वी से आकाश तक के ५ तत्त्वों के अधिठात्री देवता हैं। इसका दार्शनिक तात्पर्य यह है कि पाँचों महा-तत्त्वों की सक्रियावस्था और निष्क्रियावस्था दोनों में भगवती का अधिष्ठान है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! आप जिन भक्तों के हृदय में पञ्च-प्रेत-मय आसन पर बैठनेवाले स्वरूप में प्रकाशित होती हो, वे पाँचों तत्त्वों को वश में कर लेते हैं।

***

(२५०) श्रीपञ्च-ब्रह्म-स्वरूपिणी

ब्रह्म के १. अस्ति, २. भाति, ३. प्रिय, ४. रूप और ५. नाम–इन पाँच रूपों की समष्टि या पूर्ण-रूपिणी। इससे ब्रह्म-रूप के जगद्-रूप (रूप और नाम) का नित्य संयोग-सम्बन्ध सिद्ध है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! आप पञ्च-ब्रह्म-स्वरूपिणी हो। आपके चरणों की चेतना का ही प्रकाश ब्रह्म में है। यदि ऐसा न हो, तो सम्पूर्ण जगत् सत्-चित्-आनन्द से सूना होकर किसी के भी अनुभव में न आवे।

***

(२५१) श्रीचिन्मयी

चित्-स्वरूपा। चित् का अर्थ है–चैतन्य या चेतना। यह दो प्रकार की है–१. अनुपहित चेतना और २. उपहित चेतना। पहली कर्तृव्य-विहीन है, जिसको तुरीयातीता कहते हैं। दूसरी तुरीय ब्रह्म-रूपिणी है, जो सकर्तृत्व है अर्थात् इच्छा आदि त्रि-शक्तियों की धारण-कर्त्री है।

◆◆स्तुति◆◆

हे माता श्रीललिताम्बा! जो भक्त-जन चिन्मयी चित्-स्वरूपिणी-स्वरूप में आपका चिन्तन करते हुए, आपके मन्त्र को जपते हैं, वे संसार के बन्धनों से मुक्त होकर आपकी चित्-कला को प्राप्त हो जाते हैं।।

***

उपयोगी पुस्तकें

भगवती शतक	१०)
भक्ति-योग	१०)
भगवती मानस-पूजा-स्तोत्र	१०)
भागवत धर्म का प्राचीन इतिहास	१५)
भैरवी-चक्र-पूजन	६)
मन्त्र-कल्पतरु, पुष्प-१, २	७०)
मन्त्र-सिद्धि का उपाय	६)
मन्त्र-कोष	३००)
मन्त्रात्मक-सप्तशती (सजिल्द)	५००)
महा-विद्या स्तोत्र	१०)
महा-गणपति साधना	३५)
मुद्राएँ एवं उपचार (सचित्र)	२५)
महा-शक्ति-पीठ विन्ध्याचल	४०)
मन्त्र-योग	१०)
रमा-परायण	३५)
राम अङ्क	१०)
राज-योग	१०)
रास-लीला-विज्ञान	१०)
ललिता-महा-त्रिपुर-सुन्दरी-पूजा	२५)
ललिता-सप्तशती	४५)
लेख-संग्रह-स्वामी दिव्यानन्द जी	५)
लघु चण्डी	१५)
वन्दे मातरम्	५)
वैदिक देवी-पूजा पद्धति	५)
वाम-मार्ग	२०)
विशुद्ध चण्डी (श्रीदुर्गा-सप्तशती)	४०)
विज्ञान-योग	१०)
शाबर-मन्त्र-संग्रह (बारह भाग)	४६०)
शाक्त धर्म क्या है?	१५)
शत-चण्डी-विधान	२५)
शिव-शक्ति-अङ्क	५०)
श्रीचक्र-रहस्य	२०)
श्रीविद्या-स्तोत्र पञ्चकम्	३५)
श्रीविद्या-सपर्या-वासना	१००)
श्रीत्रिपुरा महोपनिषद्	१०)
श्री विद्या-साधना (५ पुष्प)	२००)
सप्तशती तत्त्व	४०)
सम्पादक के संस्मरण	५०)
साधक का संवाद	२५)
सौन्दर्य-लहरी	१५)
सौन्दर्य-लहरी के यन्त्र-प्रयोग	२०)
सार्थ सौन्दर्य-लहरी	८०)
सप्त-दिवसीय सप्तशती-पाठ	३५)
सम्पुटित सप्तशती	४५)
सविधि श्रीरुद्र-चण्डी	१०)
सांख्यायन तन्त्र (हिन्दी सारांश सहित)	१००)
साधना-रहस्य	६०)
सार्थ चण्डी (श्री दुर्गा सप्तशती)	२५०)
स्वर-विज्ञान	७५)
हवनात्मक सप्तशती	१००)
हठ-योग	१०)
हिन्दी कुलार्णव तन्त्र	१००)
हिन्दी कौलावली-निर्णय	२५)
हिन्दी महा-निर्वाण तन्त्र	१५०)
हिन्दी शाक्तानन्द-तरङ्गिणी	१५)
हिन्दुओं की पोथी	२५)
होलिका-महिमा एवं पूजन-विधि	५)
होमेज टू एनसेस्टर्स (पितृ-पूजा)	२०)
आगमोक्त योग-साधना (अंग्रेजी में)	१०)

श्रीचण्डी-धाम, अलोपी-देवी मार्ग, प्रयाग-२११००६ फोन: ०५३२-२५०२७८३, ०९४५०२२२७६७

'चण्डी'-पुस्तक-माला द्वारा प्रकाशित

उपयोगी नवीन प्रकाशन

आदि-सम्पादक

'कुल-भूषण' पण्डित रमादत्त शुक्ल

१. श्री श्रीविद्या-खड्ग-माला

२. श्रीबगला-साधना (पुष्प १)

३. साधना-रहस्य

४. नव-ग्रह-साधना

५. हिन्दी कुलार्णव तन्त्र

६. हिन्दी महा-निर्वाण तन्त्र

मँगाने के लिए सम्पर्क करें :

श्री चण्डी-धाम, कल्याण मन्दिर प्रकाशन

अलोपी-देवी मार्ग, प्रयाग-२११००६

दूरभाष : ०५३२-२५०२७८३, ०९४५०२२२७६७